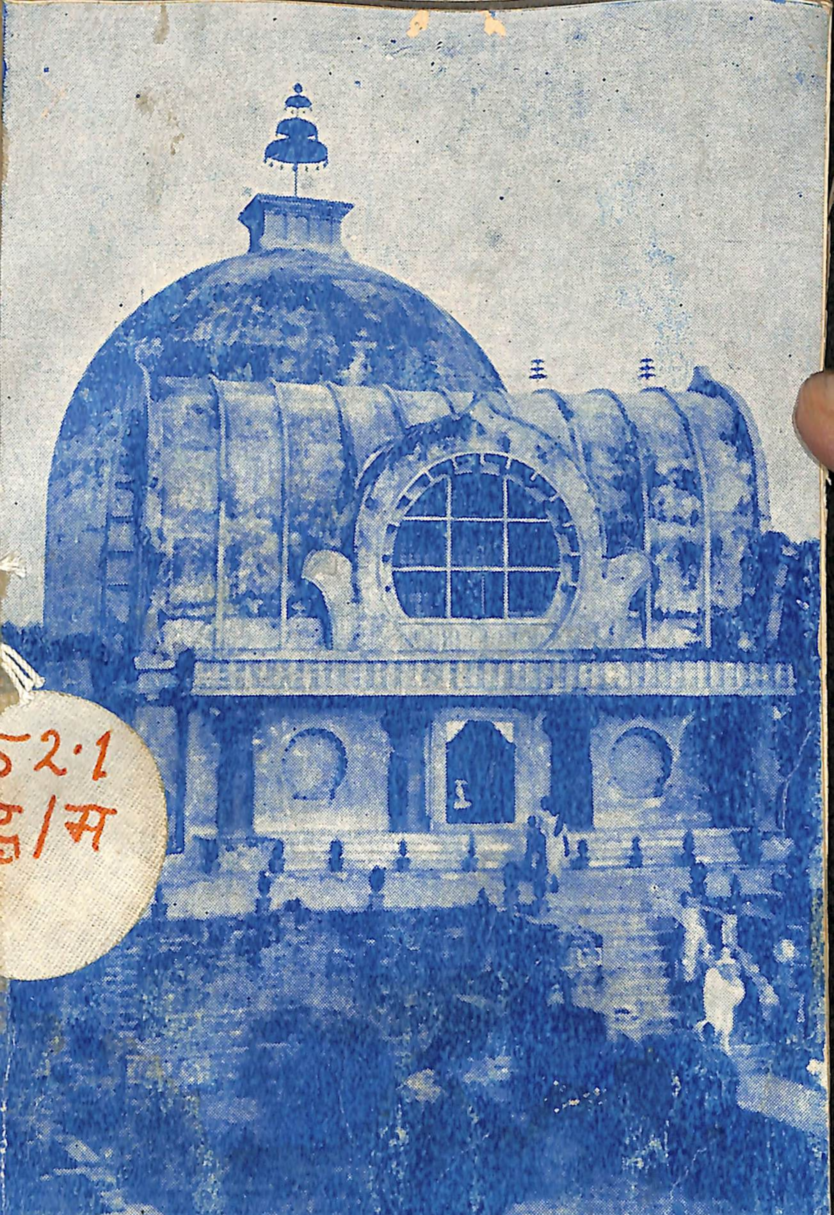


महापरिनिब्बानसुत्तं

महापरिनिब्बानसुत्तं

(महापरिनिर्वाण सूत्र)

(भगवान बुद्ध का अन्तिम उपदेश—मूल पालि एवं हिन्दी अनुवाद)

सम्पादक

स्थविर ग. प्रज्ञानन्द

भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद

लखनऊ

१९८१

प्रकाशक :
मंत्री,
भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद
बुद्ध विहार,
रिसालदार पार्क, लखनऊ-२२६००१

संस्करण : प्रथम

मुद्रण वर्ष : १९८१

मूल्य : रु० ८.०० मात्र

मुद्रक :
भारतीय प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
अमीनाबाद, लखनऊ-२२६००१

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

प्रकाशकीय

"दीघनिकाय के एक महत्वपूर्ण-सूत्र महापरिनिब्बानसुत्तं को पाठकों के हाथ में देते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इस सुत्तं (सूत्र) में मूल पालि के साथ हिन्दी अनुवाद भी दे दिया गया है। ताकि मूल पालि न जानने वालों को भी मूल का आनन्द मिल सके। अनुवाद में एक बात को दोबारा न कह कर —०— से काम लिया है।

इस सूत्र में उत्तरी भारत के प्राचीन मगध, वैशाली, कपिलवस्तु, कुशीनारा आदि तत्कालीन प्रजातन्त्र राष्ट्रों की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्था का सुन्दर विवरण है। दूसरे शब्दों में यह सूत्र बुद्ध-कालीन भारत के प्रजातन्त्र राज्यों का एक प्रामाणिक इतिहास है। अतः इस पर प्रकाश डालने के लिए एक विस्तृत ऐतिहासिक भूमिका की अनिवार्य आवश्यकता थी परन्तु पुस्तक का आकार न बढ़ने पावे इसलिए यहाँ संक्षेप में दे रहा हूं।

मूल पालिभाषा को यथाशक्ति शुद्ध-शुद्ध छापने की कोशिश की गई है फिर भी यदि कुछ त्रुटियाँ रह गई हों तो आशा है कृपालु पाठक इस ओर विशेष ध्यान न दे कर पूज्य तथागत की उन शिक्षाओं और आदर्शों को, जो अमीर-गरीब सबके लिए कल्याणप्रद हैं, ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे।

इस सूत्र का हिन्दी अनुवाद प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् त्रिपिटकाचार्य महापण्डित राहुल सांकृत्यायन जी और भिक्षु जगदीश काश्यप जी एम० ए० द्वारा अनूदित 'दीघनिकाय' से लिया गया है। इसके लिए मैं इन विद्वानों का कृतज्ञ हूं।

कैलणिय विश्वविद्यालय, कैलणिय (श्रीलंका) के संस्कृत विभाग के ज्येष्ठ प्रवक्ता पूज्य मारम्ब रत्नसार महास्थविर का मैं परम कृतज्ञ हूं। जिन्होंने मूलपालि को इतना शुद्ध छापने; शुद्धिपत्रावलोकन एवं सम्पादन में विशेष सहयोग दिया। अतः मैं इनका हृदय से कृतज्ञ हूं।

१९४१ में पूज्य भिक्षु ऊ० कित्तिमा महास्थविर, वाराणसी ने एवं भिक्षु धर्मरक्षित सारनाथ, वाराणासी ने भी इस सूत्र को एक स्वतंत्र पुस्तक के रूप में छापा था जो अब उपलब्ध नहीं है। जिससे पालि भाषा के विद्यार्थियों को बड़ी असुविधा हो रही थी। आशा है प्रस्तुत संस्करण से वह असुविधा दूर हो सकेगी।

—प्रकाशक

-: भूमिका :-

बुद्ध वचन अर्थात् त्रिपिटक का सबसे महत्वपूर्ण भाग सुत्तपिटक है। भगवान बुद्ध के धर्म का यथार्थ रूप में परिचय कराना ही सूत्तपिटक का एक मात्र विषय है। भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण तक धर्म और विनय ही की प्रधानता थी। तथागत ने उसी की शरण में भिक्षुओं को छोड़ा था। शास्ता के महापरिनिर्वाण के तत्काल बाद जो प्रथम संगायन हुआ था, वह धम्भ एवं विनय का ही था।

सुत्तपिटक भगवान बुद्ध के उपदेश का भाग होने के साथ ही साथ छठी और पाँचवीं शताब्दी ईसवी पूर्व के भारत के सब प्रकार के ऐतिहासिक, सामाजिक और भौगोलिक ज्ञान का वह भण्डार है, जिसे कोई भुला नहीं सकता है। अतः वह बौद्ध धर्म दर्शन के अनुयायियों के लिये जितना महत्वपूर्ण है उतना ही इतिहास और साहित्य के मर्मज्ञों के लिये भी नई दिशा देने वाला है।

सुत्तपिटक के पांच निकायों में दीघ निकाय एक है। इसमें प्रायः सभी दीर्घ आकार के सुत्त है जो कुल ३४ हैं।

महापरिनिर्वाण सुत्त दीघ निकाय के सीलक्खन्ध, महावग्ग और पाथेय या पाटिक वग्ग में से महावग्ग के अन्तर्गत आता है। यह दीघ निकाय के सूत्रों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें भगवान बुद्ध के जीवन के अन्तिम दिनों की घटनाये हमें देखने को मिलती हैं। १–वज्जियों के विरुद्ध अजातशत्रु के अभियान की इच्छा, २–भगवान बुद्ध की अन्तिम यात्रा, ३–आम्रपालि गणिका का भोजन दान, ४–भगवान की कड़ी बीमारी,

५–चुन्द का दिया अन्तिम भोजन, ६–जीवन का अन्तिम समय, ७–स्त्रियों के प्रति भिक्षुओं के कर्त्तव्य, ८–चक्रवर्ती राजा की दाह क्रिया, ९–सुभद्र की प्रव्रज्या, १०–अन्तिम उपदेश, ११–भगवान का महापरिनिर्वाण १२–दाह क्रिया, १३–स्तूप निर्माण ।

महापरिनिर्वाण सुत्त धार्मिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक महत्व का सूत्र है। इसमें महत्वपूर्ण विविध विषयों पर भगवान ने सूत्र रूप में अर्थात् संक्षेप में प्रकाश डाला है। अलंकारिक भाषा और पौराणिक भावों को छोड़कर देखा जाय तो महापरिनिर्वाण सूत्र बुद्धकालीन भारत का जीता-जागता इतिहास है।

महापरिनिर्वाण सूत्र से संबंधित अर्थात् समान उपदेश वाले और सूत्र जो दीघनिकाय में हैं वे हैं—सम्पसादनीय, जनवसभ और महासुदस्सन सूत्र। सम्पसादनीय सूत्र एक समय भगबान के नालन्दा में पावारिक आम्रवन में विहार करते समय सारिपुत्र महाथेर ने दिया था। जनवसभ सूत्र का उपदेश भगवान ने नादिका में दिया था। आनन्द महाथेर की संतुष्टि के लिए अंतिम समय कुशीनारा के प्राचीन गौरब के विषय में दिए गए उपदेश महासुदस्सन सूत्र में सन्निहित हैं।

महापरिनिर्वाण सूत्र आख्यान शैली के समान हैं और दीघनिकाय के दीर्घ आकार के पांच सूत्रों में से सबसे अधिक दीर्घ सूत्र है। वर्षा ऋतु के पूर्व राजगृह के वर्षकार ब्राह्मण के साथ हुए वार्तालाप से इस सूत्र का प्रारम्भ होता है और तथागत की अस्थियों पर स्तूप निर्माण की अवधि तक की घटनायें क्रमबद्ध रूप से इसमें वर्णित हैं। प्रायः प्रत्येक सूत्र एक ही विषय पर प्रकाश डालता है। लेकिन महापरिनिर्वाण सूत्र में प्रायः सभी प्रमुख विषयों पर थोड़ा-थोड़ा प्रकाश डाला गया है। अतः इसे त्रिपिटक का उपसंहार कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। इसमें तथागत के मानव रूप एवं महा मानव रूप दोनों ही हमें देखने को मिलते हैं।

भगवान ने अन्तिम समय अपने से संबंधित अधिक से अधिक भक्त-जनों एवं स्थानों में अपने धर्म को पुनः प्रकाशित किया था, यह बात महा-परिनिब्बान सुत्तं से स्पष्ट है। इस यात्रा में जिन-जिन स्थानों में भगवान गये उन नगरों, ग्रामों एवं नदियों का ऐतिहासिक महत्व भी मिलता है।

सूत्र का प्रारम्भ ऐतिहासिक घटना से इस प्रकार प्रारम्भ होता है मगधराज का महामात्य वस्सकार भगवान बुद्ध से कहता है।

"मगधराज राजा अजातशत्रु आप गौतम के पैरों में शिर से वन्दना करता है और कहता है कि वह युद्ध करके वज्जियों को उच्छिन्न करेगा।"

"उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान् के पीछे (खड़े हुए) भगवान् के ऊपर पंखा झल रहे थे। तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को संबोधित किया—

[१] "आनन्द ! क्या तूने सुना है, कि वज्जी (सम्मति के लिये) बरावर बैठक (=सन्निपात) करते हैं=सन्निपात-बहुल हैं ?"

"सुना है' भन्ते ! वज्जी बराबर बैठक करते हैं।"०००

"आनन्द ! जब तक वज्जी बैठक करते रहेंगे=सन्निपात-बहुल रहेंगे; (तब तक) आनन्द ! वज्जियों की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।

[२] "क्या आनन्द ! तूने सुना है, वज्जी एक ही बैठक करते हैं, एक ही साथ उत्थान करते हैं, वज्जी एक ही करणीय (=कर्तव्य) को करते हैं ?"

"सुना है, भन्ते ! ०।"

"आनन्द ! जब तक ०।

[३] "क्या तूने सुना है, वज्जी अ-प्रज्ञप्त (=गैरकानूनी) को प्रज्ञप्त (=विहित) नहीं करते, प्रज्ञप्त (=विहित) का उच्छेद नहीं करते। जैसे प्रज्ञप्त है, वैसे ही पुराने पुराने वज्जि-धर्म (=०नियम) को ग्रहण कर, बर्तते हैं ?"

"भन्ते ! सुना है।"

"आनन्द ०! जब तक कि ०।"

[४] "क्या आनन्द ! तूने सुना है—वज्जियों के जो महल्लक (=वृद्ध) हैं, उनका (वह) सत्कार करते हैं,=गुरुकार करते हैं, मानते हें, पूजते हैं; उनकी (बात) सुनने योग्य मानते हैं,—

"भन्ते ! सुना है ०।"

"आनन्द ! जब तक कि ०।"

[५] "क्या तूने सुना है—जो वह कुल-स्त्रियाँ हैं, कुमारियां हैं, उन्हें (वह) छीनकर, जबर्दस्ती नहीं बसाते ?"

"भन्ते ! सुना है।"

"आनन्द ! ० जब तक ०।"

[६] "क्या ० सुना है—वज्जियों के (नगर के) भीतर या बाहर के जो चैत्य (पूज्य-स्थल) हैं, वह उनका सत्कार करते हैं, ० पूजते हैं। उनके लिये पहिले किये गये दान को, पहिले की गई धर्मानुसार बलि (=वृत्ति) को, लोप नहीं करते ?"

"भन्ते ! सुना है ० ?"

"जब तक ०।"

[७] "क्या सुना है,—वज्जी लोग अर्हतों (=पूज्यों) की अच्छी तरह धार्मिक (=धर्मानुसार) रक्षा--आवरण=गुप्ति करते हैं। किसलिये ? भविष्य में अर्हत् (लोग) राज्य में आवें, आये अर्हत् राज्य में सुख से विहार करें।"

"सुना है, भन्ते !"

"जब तक ०।"

तब भगवान्ने ० वस्सकार ब्राह्मण को संबोधित किया—

"ब्राह्मण! एक समय मैं वैशाली के सारन्दद चैत्य में विहार कर रहा था। वहाँ मैंने वज्जियों को यह सात अपरिहाणीय-धर्म (=अ-पतन के-नियम) कहे। जब तक ब्राह्मण; यह सात अपरिहाणीय-धर्म वज्जियों में रहेंगे; इन सात अपरिहाणीय-धर्म में वज्जी (लोग) दिखलाई पड़ेगे; (तब तक) ब्राह्मण ! वज्जियों की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।"

ऐसा कहने पर वस्सकार ब्राह्मण भगवान् से बोला—

"हे गौतम ! (इनमें से) एक भी अपरिहाणीय-धर्म से वज्जियों की वृद्धि ही समझनी होगी, सात अ-परिहाणीय धर्मों की तो बात ही क्या ? हे गौतम ? राजा० को उपलाप (=रिश्वत देना), या आपस में फूट को छोड़, युद्ध करना ठीक नहीं। हन्त ! हे गौतम ! अब हम जाते हैं, हम बहु-कृत्य=बहु-करणीय (=बहुत काम वाले) हैं हम जाना चाहते हैं।"

ब्राह्मण ! जैसा तुम उचित समझो।

"तब मगध-महामात्य वस्सकार ब्राह्मण भगवान् को अभिवादन कर, अनुमोदन कर, आसन से उठकर, चला गया।

लिच्छवियों को अपरिहाणीय धर्मों का उपदेश करने के बाद भगवान ने भिक्षुओं को सात अपरिहाणीय धर्मों का उपदेश दिया था।

तब भगवान् ने उस वस्सकार ब्राह्मण के जाने के थोड़ी ही देर बाद आयुष्मान् आनन्द को संबोधित किया—

"जाओ आनन्द ! तुम जितने भिक्षु राजगृह के आसपास विहरते हैं, उन सबको उपस्थान-शाला में एकत्रित करो।"

"अच्छा, भन्ते !" ०।

"भन्ते ! भिक्षु संघ को एकत्रित कर दिया, अब भगवान् जिसका समय समझें।

तब भगवान् आसन से उठकर जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ जा, बिछे आसन पर बैठे। बैठ कर भगवान् ने भिक्षुओं को संबोधित किया—"भिक्षुओ ! तुम्हें सात अपरिहाणीय-धर्म उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो, कहता हूँ।"

—"अच्छा भन्ते !"—

[१] भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु बार बार (=अभीक्ष्ण) बैठक करने वाले=सन्निपात-बहुल रहेंगे ; (तब तक) भिक्षुओ ! भिक्षुओं की वृद्धि समझना, हानि नहीं। [२] जब तक भिक्षुओं ! भिक्षु एक हो बैठक करेंगे, एक हो उत्थान करेंगे; एक हो संघ के करणीय (कामों) को करेंगे; (तब तक) भिक्षुओं ! भिक्षुओं की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं। [३] जब तक भिक्षु अप्रज्ञप्तों (=अ-विहितों) को प्रज्ञप्त नहीं करेंगे, प्रज्ञप्त का उच्छेद नहीं करेंगे; प्रज्ञप्त शिक्षा पदों (=विहित भिक्षु नियमों) के अनुसार आचरण करेंगे०। [४] जब तक ० जो वह रक्तज्ञ (=धर्मानुरागी) चिरप्रव्रजित, संघ के पिता, संघ के नायक, स्थविर भिक्षु हैं, उनका सत्कार करेंगे, गुरुकार करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे, उन (की बात) को सुनने योग्य मानेंगे ० [५] जब तक पुनः पुः उत्पन्न होने वाली तृष्णा के मद में नहीं पड़ेंगे०। [६] जब तक ० भिक्षु आरण्यक शयनासन (=वन की

कुटियों) की इच्छा वाले रहेंगे०। [७] जब तक भिक्षुओ ! हर एक भिक्षु यह याद रखेगा कि अनागत (=भविष्य) में सुन्दर सुब्रह्मचारी आवें, आये हुए (=आगत) सुन्दर ब्रह्मचारी सुख से विहरे; (तब तक) ०। भिक्षुओ ! जब तक ये सात अपरिहाणीय-धर्म (भिक्षुओं में) रहेंगे ? (जब तक) भिक्षु इन सात अ-परिहाणीय-धर्मों में दिखाई देंगे; (तब तक) भिक्षुओं की वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।

"भिक्षुओं ! और भी सात अ-परिहाणीय धर्मों को कहता हूँ। उसे सुनो ०।.....। [१] भिक्षुओं ! जब तक भिक्षु (सारे दिन चीवर आदि) काम में लगे रहने वाले (=कर्माराम)=कर्मरत=कर्मारामता-युक्त नहीं होंगे। (तब तक) ०। [२] जब तक भिक्षु बकवाद में लगे रहने वाले (=भस्साराम), =भस्सरत=भस्सारामता-युक्त नही होंगे। [३] ० निद्राराम=निद्रा-रत=निद्रारामता-युक्त नहीं होंगे ०। [४] ० संगणिकाराम (=भीड़ को पसन्द करने वाले)=संगणिकरत=संगणिकारामता-युक्त नहीं होंगे०। [५] ० पापेच्छ (=बदनीयत)=पाप इच्छाओं के वश में नहीं होंगे० [६] पाप-मित्र (=बुरे मित्रों वाले),=पाप-सहाय, बुराई की ओर रुझान वाले नहीं होंगे०। [७] ० थोड़े से विशेष (=योग-साफल्य) को पाकर बीच में न छोड़ देंगे तब तक भिक्षुओं की वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।

"भिक्षुओं! और भी सात अ-परिहाणीय धर्मों को कहता हूँ ०।...। [१] भिक्षुओं ! जब तक भिक्षु श्रद्धालु होंगे ०। [२] पाप से लज्जाशील (=ह्रीमान) होंगे ०। [३] ० (पाप से) भय खाने वाले (=अपत्रपी) होंगे ०। [४] ० बहुश्रुत ० [५] ० उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) ०। [६] ० याद रखने वाले (=उपस्थित-स्मृति) ०। [७] ० प्रज्ञावान् होंगे तब तक भिक्षुओं की वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।

"भिक्षुओं ! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मों को कहता हूं।

[१] भिक्षुओं जब तक भिक्षु स्मृति संबोध्यंग[1] की भावना करेंगे ०। [२] ० धर्म-विचय-संबोध्यंग की०। [३] ० वीर्य-संबोध्यंग। [४] प्रीति-संबोध्यंग [५] ० प्रश्रब्धि-संबोध्यंग। [६] ० समाधि-संबोध्यंग। [७] ० उपेक्षासंबोध्यंग की भावना करेंगे। तब तक भिक्षुओं की वृद्धि ही समझना हानि नहीं।

"भिक्षुओं! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मों को कहता हूँ।........। [१] भिक्षुओ! जब तक भिक्षु अनित्य-संज्ञा की भावना करेंगे ० [२] ० अनात्मसंज्ञा ०। [३] ० भोगों में अशुभसंज्ञा ०। [४] आदिनव (=दुष्परिणाम)-संज्ञा। [५] प्रहाण-(=त्याग) संज्ञा ०। [६] ० विराग-संज्ञा ०। [७] निरोध-संज्ञा० । ०।

"भिक्षुओ! और भी छः अ-परिहाणीय-धर्मों को कहता हूँ।.....। [१] जब तक भिक्षु-सब्रह्मचारियों (=गुरुभाइयों) में गुप्त और प्रकट, मैत्रीपूर्ण कायिक कर्म रखेंगे ०। [२] ० मैत्रीपूर्ण वाचिक-कर्म रखेंगे ०। [३] ० मैत्रीपूर्ण मानसिक-कर्म रखेंगे ०। [४] ० जब तक भिक्षु धार्मिक, धर्म से प्राप्त जो लाभ हैं—यहाँ तक कि पात्र में चुपड़ने मात्र भी—जैसे लाभों को (भी) शीलवान् सब्रह्मचारी भिक्षुओं में बाँटकर भोग करने वाले होंगे ० [५] ० जब तक भिक्षु, जो वह अखंड (=निर्दोष) अ-छिद्र, अ-कलमष=भुजिस्म (=सेवनीय), विद्वानों से प्रशंसित, अ-निन्दित समाधि की ओर (ले) जाने वाले शील हैं, वैसे शीलों से शील-श्रामण्य-युक्त हो ब्रह्मचारियों के साथ गुप्त भी प्रकट भी बिहरेंगे ०। [६] जो वह आर्य (=उत्तम), नैर्याणिक (=पार कराने वाली), वैसा करने वाले को अच्छी प्रकार दुःख-क्षय की ओर ले जाने वाली दृष्टि है, वैसी दृष्टि से दृष्टि-श्रामण्य-युक्त हो, ब्रह्मचारियों के साथ गुप्त भी प्रकट

---

1. परम ज्ञान प्राप्त करने के लिये आवश्यक सात बातें।

भी विहरेंगे। भिक्षुओ! जब तक यह छः अपरिहाणीय-धर्म भिक्षुओं में रहेंगे तब तक भिक्षुओं की वृद्धि ही होगी हानि नहीं।

वहाँ राजगृह में गृध्रकूट-पर्वत पर विहार करते हुए भगवान् भिक्षुओं को अधिकतर यही धर्मकथा कहते थे—ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है। शील से प्रभावित समाधि महाफलवाली= महा-अनुशंसवाली होती है। समाधि से प्रभावित प्रज्ञा महाफलवाली= महानृशंसवाली होती है। प्रज्ञा से प्रभावित चित्त आस्रवों—कामास्रव, भवास्रव, दृष्टि-आश्रव—से अच्छी तरह मुक्त होता है।

परिनिर्वाण से पूर्व आनन्द ने भगवान से पूछा, भन्ते! तथागत के शरीर को हम क्या करेंगे? भगवान् ने उत्तर दिया, आनन्द! तथागत् की शरीर-पूजा से तुम निश्चित रहो। आनन्द! तुम तो सच्चे पदार्थ के लिये ही प्रयत्न करो, सच्चे पदार्थं के लिये ही उद्योग करो। सच्चे अर्थ के लिये ही अप्रमादी, उद्योगी, आत्मसंयमी हो विहरो। तुम केवल मेरे महापरिनिर्वाण के बाद मल्लों को सुखी करो।

वास्तव में बुद्ध के अन्तिम जीवन से परिचित होने के लिये और उनके सहायक शिष्य आनन्द के साथ उनकी उस समय की चारिकाओं के लिये इस सुत्त का पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है।

महापरिनिर्वाण प्राप्त करने से पूर्व भगवान् ने भिक्षुओं को आश्वस्त किया आनन्द! शायद तुम को ऐसा हो—हमारे शास्ता चले गये, अब हमारे शास्ता नहीं हैं। आनन्द! ऐसा मत समझना। मैंने जो धर्म और विनय के उपदेश तुम्हें किये हैं, वे ही मेरे बाद शास्ता होंगे। "यो वो आनन्द मया धम्मो च विनयो च देसितो पत्तो, सो वो ममच्चयेन सत्था।" अनुकम्पक शास्ता ने अंतिम बार भिक्षुओं को संबोधित किया हन्त! भिक्षुओं अब तुम्हें कहता हूं—सभी संस्कार (कृत वस्तुएं)

व्ययधर्मा (नाशवान्) हैं, अप्रमाद के साथ (जीवन के लक्ष्य को) प्राप्त करो वयधम्मा संखारा अप्पमादेन सम्पादेथ (यही तथागत का अन्तिम वचन) था। राजगृह से लेकर कुसीनारा तक की बुद्ध-यात्रा का वर्णन, जहां-जहां भगवान् रुके पूर्ण विवरण के साथ, हमें यहाँ मिलता है। इस प्रकार अंबलट्ठिका, नालन्दा, पाटलिग्राम, कोटिग्राम, नादिका, वैशाली, भंडगाम, हत्थिगाम और पावा आदि स्थानों का वर्णन आया है।

भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् उनके शरीर का अंतिम संस्कार चक्रवती राजा के शरीर के अन्तिम संस्कार की भांति करने तथा तथागत के अन्तिम समय उत्तर की ओर सिर और दक्षिण की ओर पैर कर सिंह शैया पर लेट जाने का उल्लेख आता है। शास्ता के मृत शरीर को जलाने के पूर्व और पश्चात् मल्लों ने माला-गंध-पुष्प से सजाने के बाद गीत वाद्यों से सप्ताह भर पूजा करने के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि मल्लों ने अपने धर्म गुरु का तत्कालीन उच्चतम पद्धति से पूजा सत्कार किया था। सामान्य जन की भांति न जलाकर नये वस्त्रों में, रुई में, कई बार लपेट कर तेल की द्रोणी में रखकर जलाने के बाद अस्थियों (अवशेषों) को सुरक्षित रखना, स्तूप निर्माण आदि की तत्कालीन गौरवपूर्ण पद्धति थी। मल्लों ने, लिच्छवियों ने एवं शाक्य आदि राजाओं ने इसका पालन किया।

तथागत के शरीर को कुछ लोगों ने दक्षिण की ओर से दक्षिण द्वार से ले जाने का प्रयास किया लेकिन उत्तर ही उत्तर नगर के बीच होकर उत्तर द्वार से ले जाकर एक रमणीय स्थल "मुकुटबंधन चैत्य" स्थल पर जलाया गया। इन सब बातों से तत्कालीन सामाजिक स्थिति एवं मान्यताओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

"वाशिष्टों! चक्रवर्ती राजा के शरीर को नये कपड़े से लपेटते हैं ०। (दाहकर) बड़े चौरस्ते पर तथागत का स्तूप बनवाना

चाहिये। वहाँ जो माला, गंध या चूर्ण चढ़ायेंगे, या अभिवादन करेंगे, या चित्त को प्रसन्न करेंगे, उनके लिये वह चिरकाल तक हित-सुख के लिये होगा।"

तथागत की कड़ी बीमारी के कारण आनन्द परेशान थे। उन्होंने भगवान से कहा कि—तथागत भिक्षु संघ के लिए अन्तिम समय कुछ उपदेश दिए बिना आप महापरिनिर्वाण को प्राप्त न करें। आनन्द की इस बात को सुनकर भगवान ने कहा—कि भिक्षु संघ, तथागत से क्या चाहता है—हमने कोई भी गुरु मुष्टि नहीं रखी है।

तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—"भिक्षुओं ! (यदि) बुद्ध, धर्म, संघ में एक भी भिक्षु को कुछ भी शंका हो, (तो) पूछ लो। भिक्षुओं पीछे अफसोस मत करना—'शास्ता हमारे सन्मुख थे, (किन्तु) हम भगवान् के सामने कुछ पूछ न सके।'"

तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—"हन्त ! भिक्षुओं अब तुम्हें कहता हूँ—"संस्कार (=कृतवस्तु) व्यय-धर्मा (=नाशमान्) हैं; अप्रमाद के साथ (=आलस त्याग कर जीवन के लक्ष्य को) सम्पादन करो।"—यह तथागत का अन्तिम वचन है।"

तब कुसीनारा के मल्ल लोग गंध-माला, वाद्यों और पाँच हजार थान (=धुस्स)—जोड़ों को लेकर जहाँ उपवत्तन था, जहाँ भगवान् का शरीर था, वहाँ गये। जाकर उन्होंने भगवान के शरीर को नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंध से सत्कार करते, गुरुकार करते, मानते पूजते, कपड़े का वितान (=चँदवा) करते, मंडप बनाते उस दिन को बिता दिया। इसी प्रकार सात दिन बिता दिये।

सुभद्र भगवान बुद्ध से साक्षात् दीक्षा लेने वाला अन्तिम शिष्य था।

उन्होंने दूसरी विचार धाराओं के धर्म उपदेशकों के पूर्ण कस्सप, मक्खली गोसाल आदि के विषय में जानना चाहा कि वे वास्तविक धर्म को जानकर उपदेश करते हैं या बिना जाने।

नहीं सुभद्र! जाने दो इन दावों को ० तुम्हें धर्म उपदेश करता हूँ। उसे सुनो, अच्छी तरह मन न करो।

सुभद्र, जिस धर्म विनय में आर्य अष्टांग मार्ग उपलब्ध नहीं होता वहाँ प्रथम श्रमण (स्त्रोतापन्न) भी उपलब्ध नहीं होता, द्वितीय श्रमण (सकृदागामी) भी उत्पन्न नहीं होता। तृतीय श्रमण (अनागामी), चतुर्थ श्रमण (अर्हत्) भी उपलब्ध नहीं होता। सुभद्र! इस धर्म विनय में आर्य अष्टाँगिक मार्ग उपलब्ध होता है। प्रथम श्रमण, द्वितीय एवं तृतीय श्रमण भी वहाँ उपलब्ध होता है। चतुर्थ श्रमण भी है। दूसरे वाद (=मत) श्रमणों से शून्य है। सुभद्र! यहाँ (आये) भिक्षु ठीक से विहार करेंगे बौद्ध अर्हतों से शून्य न होवे।

किसी को भी क्षुद्र न समझने की सलाह भी हमें यहीं मिलती है क्योंकि सभी की स्थिति सदा समान नहीं रहती। यह बात कुशीनगर को क्षुद्र नगर न समझने की सलाह से मिलती है।

महाकाश्यप—आनन्द आदि को शीघ्रातिशीघ्र भगवान के उपदेशों के संकलन (संगायन) की आवश्यकता बुड्ड पब्बजित (वृद्ध प्रव्रजित) सुभद्र[1] नामक एक दूसरे भिक्षु की बात के कारण हुई।

---

1. एक ही सुभद्र नाम के दो भिक्षुओं का उल्लेख महापरिनिर्वाण सुत्त में में आया है। भगवान से अन्तिम समय दीक्षित होने वाला सुभद्र और महाकाश्यप की परिषद में उपस्थित वृद्ध प्रव्रजित सुभद्र जिसने तथागत के महापरिनिर्वाण में अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी।

सुभद्र की बात के कारण महाकाश्यप अर्हत् आदि ने यह उचित समझा कि तथागत के धर्म विनय को यथावत् सुरक्षित रखना आवश्यक है अन्यथा कालान्तर में शास्ता के धर्म को समझना भी कठिन हो जायगा। सुभद्र की यह बात महापरिनिर्वाण सूत्र के साथ ही "चुल्लवग्ग" में भी आयी है।

महीशासक, धर्मगुप्तिक, महासांघिक और सर्वास्तिवादी सम्प्रदायों में भी इस बात का उल्लेख है। २९०-३०६ ई० में चीनी भाषा में भी महापरिनिर्वाण सूत्र का अनुवाद हुआ था। उक्त महापरिनिर्वाण सूत्र में उल्लेख हुआ है कि महाकाश्यप, अनुरुद्ध और कात्यायन महाथेर ने आनन्द महाथेर की भी सहायता लेकर तथागत के उपदेशों को रेशम के कपड़ों और बांस की खपच्चियों में लिखकर सुरक्षित रखने की सलाह आपस में की थी। एकोत्तर आगम अट्ठकथा से ज्ञात होता है कि महाकाश्यप महाथेर ने अपने ही निर्णय पर घंटा बजाकर सभी भिक्षुओं को एकत्रित किया था और शास्ता के उपदेशों को संग्रहीत कर लेने की आवश्यकता से भिक्षुओं को अवगत कराया। त्रिपिटक संगायन के विषय में ३१७-४२० ई० में चीनी भाषा के पद्य में लिखित एक ग्रन्थ का उल्लेख प्रो० नलिनाक्ष दत्त ने किया है।

वैशाली के उल्लेख के समय स्तूपों का विशेष उल्लेख हुआ। स्तूप निर्माण बौद्ध भारत की देन है।

बेलुव ग्राम में बीमार पड़े भगवान बुद्ध का अपने अधिष्ठान बल से अपनी बीमारी को दबाकर तीन महीनों तक प्रचार कार्य करते हुए कुशीनगर तक पहुंचना और गुरु मुष्टि न रखकर उपदेश देने की बात आनन्द से कहना, तथागत के सहारे भिक्षु संघ है ऐसी धारणा शास्ता में नहीं है—यह स्पष्ट करना, चुन्द के भोजन को ग्रहण कर पावा में बीमार पड़ना, रास्ते में थक कर एक पेड़ के नीचे चीवर बिछवाकर लेट जाना, प्यास के कारण जल मांगकर पीना, ककुत्था नदी से स्नान कर आगे

बढ़ते हुए फिर से थक कर चुन्दक महाथेर से बोलना। इस प्रकार तथागत का मानव रूप हमें इस पूरे सूत्र में दिखलाई देता हैं।

तथागत ने अपने पैंतालीस वर्ष के सुदीर्घ कार्य बहुल जीवन में जो अनुपम सेवा की है इस पर भी इस ग्रन्थ रत्न से प्रकाश पड़ता है।

जेतवन उ० मा० विद्यालय **स्थविर ग० प्रज्ञानन्द**
श्रावस्ती, बहराइच

विषय सूची

नमो तस्स भगवतो अहरतो सम्मा सम्बुद्धस्स

महापरिनिब्बान सुत्तं

(१) एवं मे सुतं—एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। तेन खो पन समयेन राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो वज्जी अभियातु कामो होति। सो एवमाह—'अहं हि मे वज्जी एवं महिद्धिके, एवं महानुभावे, उच्छिज्जामि वज्जी विनासेस्सामि वज्जी अनयब्यसनं आपादेस्सामि वज्जी, ति'।

(१) ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते थे।

उस समय राजा मागध अजातशत्रु वैदेही-पुत्र* वज्जी पर चढ़ाई (= अभियान) करना चाहता था। वह ऐसा कहता था—'मैं इन ऐसे महर्द्धिक (= वैभवशाली), = ऐसे महानुभाव, वज्जियों को† उच्छिन्न करूँगा, वज्जियों का विनाश करूँगा, उन पर आफत ढाऊँगा।'

---

* गंगा (१) के घाटके पास आधा योजन अजातशत्रुका राज्य था, और आधा योजन लिच्छवियों का।...। वहाँ पर्वत के पास (= जड़) से बहुमूल्य सुगन्ध-वाला माल उतरता था। उसको सुनकर अजातशत्रु के—'आज जाऊँ कल जाऊँ' करते ही, लिच्छवी एक राय, एक मत हो पहले ही जाकर सब ले लेते थे। अजातशत्रु पीछे जाकर उस समाचार को पा क्रुद्ध हो चला आता था। वह दूसरे वर्ष भी वैसा ही करते थे। तब उसने अत्यन्त कुपित हो...ऐसा सोचा—'गण (=प्रजातंत्र) के साथ युद्ध मुश्किल है, (उनका) एक भी प्रहार बेकार नहीं जाता। किसी एक पण्डित के साथ मंत्रणा करके करना अच्छा होगा।...'। (सोच) उसने वर्षकार ब्राह्मण को भेजा।—(अट्ठकथा)

† वर्तमान मुजफ्फरपुर, चम्पारन और दरभंगा जिले।

(२) अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो वस्सकारं ब्राह्मणं मागधं महामत्तं आमन्तेसि । "एहि त्वं ब्राह्मण ! येन भगवा, तेनुपसङ्कम । उपसङ्कमित्वा मम वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दाहि । अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छ–'राजा भन्ते! मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो भगवतो पादे सिरसा वन्दति । अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छती, ति' । एवञ्च वदेहि—"राजा भन्ते ! मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो वज्जी अभियातुकामो सो एवमाह—'अहंहि मे वज्जी एवं महिद्धिके एवं महानुभावे उच्छिज्जामि वज्जी विनासेस्सामि वज्जी अनयब्यसनं आपादेस्सामि वज्जी, ति' । यथा ते भगवा ब्याकरोति । तं साधुकं उग्गहेत्वा मम आरोचेय्यासि । न हि तथागता वितथं भणन्ती, ति" ।

(३) 'एवं भो', ति खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुस्स वेदेहिपुत्तस्स पटिस्सुत्वा भद्दानि भद्दानि यानानि योजेत्वा भद्दं भद्दं यानं अभिरुहित्वा भद्देहि भद्देहि यानेहि राजगहम्हा

(२) तब मगध के राजा विदेहपुत्र अजातशत्रु ने मगध के महामात्य (=महामंत्री) वर्षकार ब्राह्मण से कहा—

"आओ ब्राह्मण ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ । जाकर मेरे वचन से भगवान् के पैरोंमें शिर से वन्दना करो । आरोग्य-अल्प-आतंक, लघु-उत्थान (= फूर्ती), सुख-विहार पूछो—'भन्ते ! राजा० वन्दना करता है, आरोग्य० पूछता है ।' और यह कहो—'भन्ते ! राजा० वज्जियों पर चढ़ाई करना चाहता है, वह ऐसा कहता है—'मैं इन० वज्जियों को उच्छिन्न करूँगा० ।' भगवान् जैसा तुमसे बोलें, उसे यादकर (आकर) मुझसे कहो, तथागत अ-यथार्थ (= वितथ) नहीं बोला करते ।"

(३) "अच्छा भो ।" कह...वर्षकार ब्राह्मण अच्छे अच्छे यानों को जुतवाकर, बहुत अच्छे यान पर आरूढ़ हो, अच्छे यानों के साथ, राजगृह से

निय्यासि। येन गिज्झकूटो पब्बतो, तेन पायासि। यावतिका यानस्स भूमियायेन गन्त्वा याना पच्चोरोहित्वा पत्तिको व येन भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एक मन्तं निसिन्नो खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगध महामत्तो भगवन्तं एतदवोच—"राजा भो गोतम! मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो भो तो गोतमस्स पादे सिरसा वन्दति। अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति"। एवञ्च वदेति—'राजा, भो गोतम! मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो वज्जी अभियातुकामो सो एवमाह—'अहं हिमे वज्जी एवं महिद्धिके एवंमहानुभावे उच्छेज्जामि वज्जी विनासेस्सामि वज्जी अनयब्यसनं आपादेस्सामि वज्जी, ति"।

(४) तेन खो पन समयेन आयस्मा आनन्दो भगवतो पिठितो ठितो होति भगवन्तं वीजयमानो। अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि,

[१] "किन्ति ते आनन्द! सुतं वज्जी अभिण्हं सन्निपाता सन्निपाता बहुला, ति?

निकला; (और) जहाँ गृध्रकूट-पर्वत था, वहाँ चला। जितनी यान की भूमि थी, उतना यान से जाकर, यान से उतर पैदल ही, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् के साथ संमोदन कर...एक ओर बैठा; एक ओर बैठकर...भगवान् से बोला—"भो गोतम!

राजा० आप गौतम के पैरों में शिर से वन्दना करता है ०।० वज्जियों को उच्छिन्न करूँगा ०'।'

(४) "उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान् के पीछे (खड़े) भगवान् को पखा झल रहे थे। तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को संबोधित किया—

[१] "आनन्द! क्या तूने सुना है, वज्जी (सम्मति के लिये) बराबर बैठक (= सन्निपात) करते हैं = सन्निपात-बहुल है?"

"सुतंमेतं भन्ते ! वज्जी अभिण्हं सन्निपाता सन्निपातबहुला, ति"।

यावकीवञ्च आनन्द ! वज्जी अभिण्हं सन्निपाता सन्निपात बहुला भविस्सन्ति, वुद्धियेव आनन्द ! वज्जीनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।

[२] किन्ति ते आनन्द ! सुतं, वज्जी समग्गा सन्निपतन्ति। समग्गा वुट्ठहन्ति। समग्गा वज्जीकरणीयानि करोन्ती, ति ?

सुतंमेतं भन्ते ! 'वज्जी समग्गा सन्निपतन्ति, समग्गा वुट्ठहन्ति, समग्गा वज्जी करणीयानि करोन्ति, ति'।

याव किवञ्च आनन्द ! 'वज्जी समग्गा सन्निपतिस्सन्ति, समग्गा वुट्ठहिस्सन्ति, समग्गा वज्जी करणीयानि करिस्सन्ति, वुद्धियेव आनन्द ! वज्जीनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि'।

[३] किन्ति ते, आनन्द ! सुतं 'वज्जी अपञ्ञत्तं न पञ्ञापेन्ति,

"सुना है' भन्ते ! वज्जी बराबर०।"

"आनन्द ! जब तक वज्जी बैठक करते रहेंगे=सन्निपात-बहुल रहेंगे; (तब तक) आनन्द ! वज्जियों की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।

[२] "क्या आनन्द ! तूने सुना है, वज्जी एक ही बैठक करते हैं, एक ही साथ उत्थान करते हैं, वज्जी एक ही करणीय (=कर्त्तव्य) को करते हैं ?"

"सुना है, भन्ते ! ०।"

"आनन्द ! जब तक ०।

[३] "क्या ० सुना है, वज्जी अ-प्रज्ञप्त* (=गैरकानूनी) को

---

* "पहले न किये गये, शुल्क या बलि (=कर) या दंड लेने वाले अप्रज्ञप्त (काम) करते हैं। । पुराना वज्जिधर्म...यहाँ पहले वज्जि राजा लोग—'यह चोर है=अपराधी है, (कह) लाकर दिखलाने पर, 'इस चोरको

पञ्ञत्तं न समुच्छिन्दन्ति, यथापञ्ञत्ते पोरणे वज्जिधम्मे समादाय वत्तन्ती, ति ?'

सुतंमेतं भन्ते ! 'वज्जी अपञ्ञत्तं न पञ्ञापेन्ति, पञ्ञत्तं न समुच्छिन्दन्ति, यथा पञ्ञत्ते पोराणे वज्जिधम्मे समादाय वत्तन्ती, ति'।

यावकीवञ्च आनन्द ! 'वज्जी अपञ्ञत्तं न पञ्ञापेस्सन्ति, पञ्ञत्तं न समुच्छिन्दिस्सन्ति यथा पञ्ञत्ते पोराणे वज्जी धम्मे समादाय वत्तिस्सन्ति, वुद्धियेव आनन्द ! वज्जीनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि'।

[४] किन्ति ते आनन्द ! सुतं—'वज्जी ये ते वज्जीनं वज्जी

प्रज्ञप्त (=विहित) नहीं करते, प्रज्ञप्त (=विहित) का उच्छेद नहीं करते। जैसे प्रज्ञप्त है, वैसे ही पुराने पुराने वज्जि-धर्म (=०नियम) को ग्रहण कर, बर्तते हैं ?"

"भन्ते ! सुना है।"

"आनन्द ० ! जब तक कि ०।"

[४] "क्या आनन्द ! तूने सुना है—वज्जियों के जो महल्लक

बांधो'—न कह विनिश्चय-महामात्य (=न्यायाधीश) को देते थे, वह विचार कर अचोर होने पर छोड़ देते थे, यदि चोर होता, तो अपने कुछ न कहकर व्यवहारिकको दे देते थे। वह भी विचारकर अचोर अचोर होने पर छोड़ देते थे, यदि चोर होता तो सूत्रधार को दे देते थे। वह भी विचार कर अचोर होनेपर छोड़ देते थे, यदि चोर होता तो अण्टकुलिक को दे देते। वह भी वैसा ही कर सेनापतिको, सेनापति उपराजको, और उपराज राजा (=गण-पति) को। राजा विचारकर यदि अचोर होता तो छोड़ देता। यदि चोर (= अपराधी) होता, तो प्रवेणी-पुस्तक बंचवाता। उसमें —जिसने यह किया, उसको ऐसा दंड हो—लिखा रहता है। राजा उसके अपराध को उससे मिलाकर उसके अनुसार दंड करता।"—अट्ठकथा।

महल्लाका, ते सक्करोन्ति गरु करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति तेसञ्च सोतब्बं मञ्ञन्ती, ति ?

सुतंमेतं भन्ते ! 'वज्जी ये ते वज्जीनं वज्जिमहल्लका, ते सक्करोन्ति गरु करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति तेसं च सोतब्बं मञ्ञन्ती, ति'।

यावकीवञ्च आनन्द ! 'वज्जी ये ते वज्जीनं वज्जिमहल्लका, ते सक्करिस्सन्ति गरु करिस्सन्ति मानेस्सन्ति पूजेस्सन्ति तेसं च सोतब्बं मञ्ञिस्सन्ति, वुद्धियेव आनन्द ! वज्जीनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।

[५] किन्ति ते, आनन्द ! सुतं—'वज्जी या ता कुलित्थियो कुल-कुमारियो ता न ओक्कस्स पसय्ह वासेन्ती, ति' ?

सुतंमेतं भन्ते ! 'वज्जी या ता कुलित्थियो कुल-कुमारियो ता न ओक्कस्स पसय्ह वासेन्ती, ति'।

यावकीवञ्च आनन्द ! वज्जी या ता कुलित्थियो कुल-कुमारियो ता न ओक्कस्स पसय्ह वासेस्सन्ति, वुद्धियेव आनन्द ! वज्जीनं पाटिकङ्खा नो परिहानि'।

(= वृद्ध) हैं, उनका (वह) सत्कार करते हैं, = गुरुकार करते हैं, मानते हैं, पूजते हैं; उनकी (बात) सुनने योग्य मानते हैं,—

"भन्ते ! सुना है ०।"

"आनन्द ! जब तक कि ०।"

[५] "क्या० सुना है—जो वह कुल-स्त्रियाँ हैं, कुमारियाँ हैं, उन्हें (वह) छीनकर, जबर्दस्ती नहीं बसाते ?"

"भन्ते ! सुना है।"

"आनन्द ! ० जब तक ०।"

[६] किन्ति ते आनन्द ! सुतं—'वज्जी यानि तानि वज्जीनं वज्जि चेतियानि अब्भन्तरानि चेव बाहिरानि च । तानि सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति । तेसं च दिन्नपुब्बं धम्मिकं बलिं नो परिहापेन्ति, ति' ?

सुतंमेतं भन्ते ! 'वज्जी यानि तानि वज्जीनं वज्जी चेतियानि अब्भन्तरानि चेव बाहिरानि च । तानि सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति । तेसं च दिन्न पुब्बंधम्मिकं बलिं नो परिहापेन्ती, ति' ।

यावकीवञ्च आनन्द ! 'वज्जी यानि तानि वज्जीनं वज्जि चेतियानि अब्भन्तरानि चेव बाहिरानि च । तानि सक्करिस्सन्ति गरु-करिस्सन्ति मानेस्सन्ति पूजेस्सन्ति । तेसञ्च दिन्नपुब्बं कतपुब्बं धम्मिकं-बलिं नो परिहापेन्ति । वुद्धियेव आनन्द! वज्जीनं पाटिकङ्खा नो परिहानि ।

[७] किन्ति ते आनन्द ! सुतं—'वज्जीनं अरहन्तेसु धम्मिका रक्खा वरणगुत्ति सुसंविहिता । किन्ति अनागता च अरहन्तो विजितं आगच्छेय्युं । आगता च अरहन्तो विजिते फासुविहरेय्युन्ति ?'

सुतंमेतं भन्ते ! 'वज्जीनं अरहन्तेसु धम्मिका रक्खावरणगुत्ति

[६] "क्या ० सुना है—वज्जियों के (नगर के) भीतर या बाहर के जो चैत्य (=चौरा=देव-स्थान) हैं, वह उनका सत्कार करते हैं, ० पूछते हैं। उनके लिये पहिले किये गये दान को, पहिले की गई धर्मानुसार बलि (=वृत्ति) को, लोप नहीं करते ?"

"भन्ते ! सुना है ० ?"

"जब तक ०।"

[७] "क्या सुना है,—वज्जी लोग अर्हतों (=पूज्यों) की अच्छी तरह धार्मिक (=धर्मानुसार) रक्षा=आवरण=गुप्ति करते हैं।

सुसंविहिता। किन्ति अनागता च अरहन्तो विजितं आगच्छेय्युं। आगता च अरहन्तो विजिते फासुविहरेय्युन्ति।'

यावकीवञ्च आनन्द! 'वज्जीनं अरहन्तेसु धम्मिका रक्खावरण गुत्ति सुसंविहिता भविस्सन्ति। किन्ति अनागता च अरहन्तो विजितं आगच्छेय्युं। आगता च अरहन्तो विजिते फासुविहरेय्युन्ति। वुद्धियेव आनन्द! वज्जीनं पाटिकङ्खा, नो परिहानी, ति'।

(५) अथ खो भागवा वस्सकारं ब्राह्मणं मगध महामत्तं आमन्तेसि— "एकमिदाहं ब्राह्मण! समयं वेसालियं विहरामि सानन्दरे चेतिये, तत्राहं वज्जीनं इमे 'सत्त अपरिहानिये धम्मे' देसेसिं। यावकीवञ्च ब्राह्मण! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा वज्जीसु ठस्सन्ति। इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु वज्जो सन्दिस्सिस्सन्ति। वुद्धियेव, ब्राह्मण! वज्जीनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि, ति।"

किसलिये? भविष्य में अर्हत् राज्य में आवें, आये अर्हत् राज्य में सुख से विहार करें।"

"सुना है, भन्ते!"

"जब तक ०।"

(५) तब भगवान् ने ० वर्षकार ब्राह्मण को संबोधित किया—

"ब्राह्मण! एक समय मैं वैशाली के सारन्दद-चैत्य में विहार करता था। वहाँ मैंने वज्जियां को यह सात अपरिहाणीय-धर्म (=अ-पतन के-नियम) कहे। जब तक ब्राह्मण! यह सात अहरि-हाणीय-धर्म वज्जियों में रहेंगे; इन सात अपरिहाणीय-धर्मों में वज्जी (लोग) दिखलाई पड़ेंगे; (तब तक) ब्राह्मण! वज्जियों की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।"

(६) एवं वुत्ते वस्सकारो ब्राह्मणो मगध महामत्तो भगवन्तं एदत-वोच—"एकमेकेनपि भो गोतम ! अपरिहानियेन धम्मेन समन्नागतानं वज्जीनं वुद्धियेव पाटिकङ्खा नो परिहानि। कोपन वादो सत्तहि अपरि-हानियेहि धम्मेहि ? अकरणीया व भो गोतम ! वज्जीनं रञ्ञा मागधेन अजातसत्तुना वेदेहिपुत्तेन यदिदं युद्धस्स अञ्ञत्र उपलापनाय अञ्ञत्र मिथुभेदाय"। "हन्द च दानि मयं, भो गोतम ! गच्छाम। बहुकिच्चा मयं बहु करणीया, ति।"

"यस्स दानि त्वं ब्राह्मण ! कालं मञ्ञसी, ति"।

(७) अथ खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगध महामत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामि।

(६) ऐसा कहने पर० वर्षकार ब्राह्मण भगवान् से बोला—

"हे गौतम ! (इनमें से) एक भी अपरिहाणीय-धर्म से वज्जियों की वृद्धि ही समझनी होगी, सात अ-परिहाणीय धर्मों की तो बात ही क्या ? हे गौतम ? राजा ० को उपलाप (=रिश्वत देना), या आपस में फूट को छोड़, युद्ध करना ठीक नहीं ! हन्त ! हे गौतम ! अब हम जाते हैं, हम बहु-कृत्य=बहु-करणीय (= बहुत काम वाले) हैं ०"

ब्राह्मण ! जिसका तू काल समझता है।"

(७) "तब मगध-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान् को अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, आसन से उठकर, चला गया*।

---

* अ. क. "राजाके पास गया। राजा ने उससे पूछा—'आचार्य ! भगवान् ने क्या कहा ?' उसने कहा—'भो ! श्रमण०के कथन से तो वज्जियों को किसी प्रकार भी लिया नहीं जा सकता; हाँ, उपलापन (= रिश्वत) और आपसमें फूट होनेसे लिया जा सकता है'। तब राजा ने कहा—'उप-

(८) अथ खो भगवा अचिरपक्कन्ते वस्सकारे ब्राह्मणे मगध महामत्ते आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"गच्छ त्वं आनन्द ! यावतिका भिक्खू राजगहं उपनिस्साय विहरन्ति। ते सब्बे उपट्ठानसालायं सन्निपातेहि, ति।"

(८) तब भगवान् ने ० वर्षकार ब्राह्मण के जाने के थोड़ी ही देर बाद आयुष्मान् आनन्द को संबोधित किया—

"जाओ, आनन्द ! तुम जितने भिक्षु राजगृहके आसपास विहरते हैं, उन सबको उपस्थान-शाला में एकत्रित करो।"

लापन से हमारे हाथी घोड़े नष्ठ होंगे, भेद (=फूट) से ही पकड़ना चाहिये।०।"

"तो महाराज ? वज्जियों को लेकर तुम परिषद् में बात उठाओ। तब मैं—'महाराज ! तुम्हें उनसे क्या है ? अपनी कृषि, वाणिज्य करके यह राज (=प्रजातन्त्रके सभासद्) जीयें'— कहकर चला जाऊँगा। तब तुम बोलना—क्यों जी ! यह ब्राह्मण वज्जियों के सम्बन्ध में होती बात को रोकता है। उसी दिन मैं उन (=वज्जियों) के लिये भेंट (=पर्णाकार) भेजूंगा; उसे भी पकड़कर मेरे ऊपर दोषारोरण कर, बन्धन, ताड़न आदि न कर, छुरे से मुण्डन करा मुझे नगर से निकाल देना। तब मैं दुर्बल—तथा गम्भीर स्थानों को जानता हूँ, अब जल्दी (तुझे) सीधा करूँगा'। ऐसा सुनकर बोलना—'तुम जाओ'।

"राजा ने सब किया। लिच्छवियों ने उसके निकालने (=निष्क्रमण) को सुनकर कहा—'ब्राह्मण मायावी (=शठ) है, उसे गंगा न उतरने दो'। तब किन्हीं किन्हीं के—'हमारे लिये कहने से तो वह (राजा) ऐसा करता है' कहने पर,—'तो भणे ! आने दो'। उसने जाकर लिच्छवियों द्वारा—'किस लिये आये ?' पूछने पर, वह (सब) हाल कह दिया। लिच्छवियों ने—

(९) 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा यावतिका भिक्खू राजगहं उपनिस्साय विहरन्ति, ते सब्बे उपट्ठानसालायं सन्निपातेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतद-वोच—"सन्निपतितो, भन्ते ! भिक्खू-संघो। यस्स दानि भन्ते ! भगवा कालं मञ्ञती, ति।"

(९) "अच्छा, भन्ते !"०।

"भन्ते ! भिक्षु संघ को एकत्रित कर दिया, अब भगवान् जिसका समय समझें।"

थोड़ी सी बात के लिये इतना भारी दंड देना युक्त नहीं था' कहकर—'वहाँ तुम्हारा क्या पद = (ठानान्तर) था'—पूछा। "मैं विनिश्चय महामात्य था' —(कहनेपर)—'यहाँ भी (तुम्हारा) वही पद रहे'—कहा। वह सुन्दर तौर से विनिश्चय (= इन्साफ) करता था। राजकुमार उसके पास विद्या (= शिल्प) ग्रहण करते थे। अपने गुणों से प्रतिष्ठित हो जाने पर वह एक दिन एक लिच्छवी को एक ओर ले जाकर—'खेत (= केदार, क्यारी) जोतते हैं' ? 'हाँ जोतते हैं'। 'दो बैल जोतकर ?'—'हाँ, दो 'बैल जोत कर'—कहकर लौट आया। तब उसको दूसरेके—'आचार्य ! (उसने) क्या कहा ?'—पूछने पर, उसने वह कह दिया। (तब) 'मेरा विश्वास न कर, यह ठीक ठीक नहीं बतलाता है' (सोच) उसने बिगाड़ कर लिया। ब्राह्मण दूसरे दिन भी एक लिच्छवी को एक ओर ले जा कर किस 'व्यंजन (= तेमन, तरकारी) से भोजन किया' पूछकर लौटने पर, उसने भी दूसरे से पूछ कर, न विश्वास कर वैसे ही बिगाड़ कर लिया। ब्राह्मण किसी दूसरे दिन एक लिच्छवी को एकान्त में ले जाकर—'बड़े गरीब हो न ?'—पूछा। 'किसने ऐसा कहा ?' 'अमुक लिच्छवी ने।' दूसरे को भी

(१०) अथ खो भगवा उट्ठायासना येन उपट्ठानसाला, तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निस्सज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"सत्त वो भिक्खवे! अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि। तं सुणाथ साधुकं मनसिकरोथ भासिस्सामी," ति।

'एवं भन्ते,' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं।

(१०) तब भगवान् आसन से उठकर जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ जा, बिछे आसन पर बैठे। बैठ कर भगवान् ने भिक्षुओं को संबोधित किया—"भिक्षुओ! तुम्हें सात अपरिहाणीय-धर्म उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो, कहता हूँ।"

—"अच्छा भन्ते!"—

एक ओर लेजाकर—'तुम कायर हो क्या?' 'किसने ऐसा कहा' 'अमुक लिच्छवी ने।' इस प्रकार दूसरे के न कहे हुए को कहते तीन वर्ष (४८३—४८० ई. पू.) में उन राजाओं में परस्पर ऐसी फूट डाल दी, कि दो आदमी एक रास्ते से भी न जाते थे। वैसा करके, जमा होने का नगारा (=सन्निपात-भेरी) बजवाया।

लिच्छवी—'मालिक (=ईश्वर) लोग जमा हों'—कहकर नहीं जमा हुए। तब उस ब्राह्मण ने राजा को जल्दी आने के लिये खबर (=शासन) भेजी। राजा सुनकर सैनिक नगारा (=बलभेरी) बजवाकर निकला। वैशाली वालों ने सुनकर भेरी बजवाई—'(आओ चलें) राजा को गंगा न उतरने दें'। उसको भी सुनकर—'देव-राज (=सुर-राज) लोग जायें' आदि कहकर लोग नहीं जमा हुए। (तब) भेरी बजवाई—'नगर में घुसने न दें, (नगर-) द्वार बन्द करके रहें'। एक भी नहीं जमा हुआ। (राजा अज्ञात-शत्रु) खुले द्वारों से ही घुस कर, सबको तबाह कर (=अनय-व्यसनं पापेत्वा) चला गया।

(११) भगवा एतदवोच ।

[१] "यावकीवञ्च भिक्खवे! भिक्खू अभिण्हं सन्निपाता सन्निपात बहुला भविस्सन्ति, वुद्धियेव भिक्खवे! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि ।" [२] "यावकीवञ्च भिक्खवे! भिक्खू समग्गा सन्निपतिस्सन्ति, समग्गा वुट्ठहिस्सन्ति, समग्गा संघ करणीयानि करिस्सन्ति। वुद्धियेव भिक्खवे! भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि।" [३] "यावकीवञ्च भिक्खवे! भिक्खू अपञ्ञत्तं न पञ्ञापेस्सन्ति, पञ्ञत्तं न समुच्छिन्दिस्सन्ति; यथा पञ्ञत्तेसु सिक्खापदेसु समादाय वत्तिस्सन्ति। वुद्धियेव भिक्खवे! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।" [४] "यावकीवञ्च भिक्खवे! ये ते भिक्खू थेरा रत्तञ्ञू चिरपब्बजिता संघ परिणायका, ते सक्करिस्सन्ति, गरूं करिस्सन्ति, मानेस्सन्ति, पूजेस्सन्ति। तेसञ्च सोतब्बं मञ्ञिस्सन्ति। वुद्धियेव भिक्खवे! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।" [५] "यावकीवञ्च भिक्खवे! भिक्खू उप्पन्नाय तण्हाय पोनोब्भविकाय न वसं गच्छिस्सन्ति। वुद्धियेव भिक्खवे!

(११) "[१] भिक्षुओ! जब तक भिक्षु बार बार (=अभीक्ष्णं) बैठक करने वाले=सन्निपात-बहुल रहेंगे; (तब तक) भिक्षुओ! भिक्षुओं की वृद्धि समझना, हानि नहीं। [२] जब तक भिक्षुओ! भिक्षु एक हो बैठक करेंगे, एक हो उत्थान करेंगे; एक हो संघ के करणीय (कामों) को करेंगे; (तब तक) भिक्षुओं! भिक्षुओं को वृद्धि ही समझना, हानि नहीं। [३] जब तक ० अप्रज्ञप्तों (=अ-विहितों) को प्रज्ञप्त नहीं करेंगे, प्रज्ञप्त का उच्छेद नहीं करेंगे; प्रज्ञप्त शिक्षा-पदों (=विहित भिक्षु नियमों) के अनुसार बर्तेंगे ०। [४] जब तक ० जो वह रक्तज्ञ (=धर्मानुरागी) चिरप्रव्रजित, संघ के पिता, संघ के नायक, स्थविर भिक्षु हैं, उनका सत्कार करेंगे, गुरुकार करेंगे; मानेंगे, पूजेंगे, उन (की बात) को सुनने योग्य मानेंगे ० [५] जब तक पुनः पुनः उत्पन्न होने वाली तृष्णा के वश में

भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।" [६] "यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू आरञ्ञकेसु सेनासनेसु सापेक्खा भविस्सन्ति। वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।" [७] "यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू पच्चत्तञ्ञेव सतिं उपट्ठपेस्सन्ति। किन्ति अनागता च पेसला सब्रह्मचारी आगच्छेय्युं, आगता च पेसला सब्रह्मचारी फासुविहरेय्युन्ति। वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।"

"यावकीवञ्च भिक्खवे ! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति। इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति। वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।"

(१२) अपरेपि खो भिक्खवे ! सत्त अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि - तं सुणाथ, साधुकं मनसिकरोथ भासिस्सामी, ति। 'एवं भन्ते,' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—[१] यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू न कम्मारामा भविस्सन्ति, न कम्मरता न कम्मारामतमनुयुत्ता ; वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।

नहीं पड़ेंगे०। [६] जब तक ० भिक्षु आरण्यक शयनासन (=वन की कुटियों) की इच्छा वाले रहेंगे०। [७] जब तक भिक्षुओ ! हर एक भिक्षु यह याद रखेगा कि अनागत (=भविष्य) में सुन्दर सुब्रह्मचारी आवें, आये हुए (=आगत) सुन्दर सुब्रह्मचारी सुख से विहरें; (तब तक) ०। भिक्षुओ ! जब तक यह सात अ-परिहाणीय-धर्म (भिक्षुओं में) रहेंगे ; (जब तक) भिक्षु इन सात अ-परिहाणीय-धर्मों में दिखाई देंगे; (तब तक) ०।

(१२) "भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहाणीय धर्मों को कहता हूँ। उसे सुनो ०।......। [१] भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु (सारे दिन चीवर आदिक) काम में लगे रहने वाले (=कर्माराम)=कर्मरत=कर्मा-

[२] यावकीवञ्च भिक्खवे! भिक्खू न भस्सारामा भविस्सन्ति, न भस्सरता न भस्सारामतमनुयुत्ता। वुद्धियेव भिक्खवे! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि। [३] यावकीवञ्च भिक्खवे! भिक्खू न निद्दारामा भविस्सन्ति, न निद्दारता, न निद्दारामतमनुयुत्ता। वुद्धियेव भिक्खवे! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि। [४] यावकीवञ्च भिक्खवे! भिक्खू न सङ्गणिकारामा भविस्सन्ति, न सङ्गणिकारता, न सङ्गणिकाराम-तमनुयुत्ता वुद्धियेव भिक्खवे! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि। [५] यावकीवञ्च भिक्खवे! भिक्खू न पापिच्छा भविस्सन्ति, न पापिकानं इच्छानं वसंगता। वुद्धियेव भिक्खवे! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि। [६] यावकीवञ्च भिक्खवे! भिक्खू न पापमित्ता भविस्सन्ति, न पाप सहाया, न पाप सम्पवङ्कता। वुद्धियेव भिक्खवे! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि। [७] यावकीवञ्च भिक्खवे! भिक्खू न ओरमत्तकेन विसेसाधिगमेन अन्तरावोसानं आपज्जिस्सन्ति। वुद्धियेव भिक्खवे! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।

यावकीवञ्च भिक्खवे! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति। इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति। वुद्धियेव भिक्खवे! भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि।

रामता-युक्त नहीं होंगे। (तब तक) ०। [२] जब तक भिक्षु बकवाद में लगे रहने वाले (=भस्साराम), =भस्सरत=भस्सारामता-युक्त नहीं होंगे। [३] ० निद्राराम=निद्रा-रत=निद्रारामता-युक्त नहीं होंगे ०। [४] ० संगणिकाराम (=भीड़ को पसन्द करने वाले)=संगणिकपक=संगणिकारामता-युक्त नहीं होंगे०। [५] ० पापेच्छ (=बदनीयत)=पाप-इच्छाओं के वश में नहीं होंगे०। [६] पाप-मित्र (=बुरे मित्रों वाले),=पाप-सहाय, बुराई की ओर झुकाव वाले न होंगे०। [७] ० थोड़े से विशेष (=योग-साफल्य) को पाकर बीच में न छोड़ देंगे ०। ०।

(१३) अपरे पि खो भिक्खवे ! सत्त अपरिहानिये धम्मे देसिस्सामि० ।

[१] ...यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू सद्धा भविस्सन्ति ।...॥

[२] ...हिरिमना भविस्सन्ति...॥

[३] ...ओत्तप्पी भविस्सन्ति...॥

[४] ...बहुस्सुता भविस्सन्ति...॥

[५] ...आरद्ध विरिया भविस्सन्ति...॥

[६] ...उपट्ठितसती भविस्सन्ति...॥

[७] ...पञ्ञावन्तो भविस्सन्ति...॥

वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि । याव कीवञ्च भिक्खवे ! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति। इमे सु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति । वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि ॥

(१४) अपरे पि वो भिक्खवे ! सत्त अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि ॥ तं सुणाथ साधुकं मनसिकरोथ भासिस्सामी, ति ॥ 'एवं, भन्ते' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं ॥

(१३) "भिक्षुओ! और भी सात अ-परिहाणाय-धर्मों को कहता हूँ ०।...। [१] भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु श्रद्धालु होंगे ०। [२] ० (पाप से) लज्जाशील (=ह्रीमान) होंगे०। [३] ० (पाप से) भय खाने वाले (=अपत्रपी) होंगे ०। [४] ० बहुश्रुत ०]५] ० उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) ०। [६] ० याद रखने वाले (= उपस्थित-स्मृति) ०। [७] ० प्रज्ञावान् होंगे ०। ०।

(१४) "भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मों को०

भगवा एतदवोच—

[१] यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू सति-सम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति ।०

[२]…धम्मविचय-सम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति…॥

[३]…विरिय-सम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति…॥

[४]…पीति-सम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति…॥

[५]…पस्सद्धि-सम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति…॥

[६]…समाधि-सम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति…॥

[७]…उपेक्खा-सम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति…॥

बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि । याव किवञ्च भिक्खवे ! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति । इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति । बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि ।

(१५) अपरे पि वो भिक्खवे ! सत्त अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि । तं सुणाथ साधुकं मनसिकरोथ भासिस्सामी, ति । 'एवं भन्ते', ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं ।

[१] भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु स्मृतिसंबोध्यंग* की भावना करेंगे ० । [२] ० धर्म-विचय-संबोध्यंग की ० । [३] ० वीर्य-सं० । [४] प्रीति-सं० । [५] ० प्रश्रब्धि-सं० । [६] ० समाधि-सं० । [७] ० उपेक्षा-संबोध्यंग की भावना करेंगे । तब तक भिक्षुओं की वृद्धि ही समझना हानि नहीं ।

(१५) "भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मों को कहता

---

*परमज्ञान प्राप्त करने के लिये सात आवश्यक बातें ।

भगवा एतदवोच—

[१] यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू अनिच्च-सञ्ञं भावेस्सन्ति...

[२]...अनत्त-सञ्ञं भावेस्सन्ति...॥

[३] ···असुभ-सञ्ञं भावेस्सन्ति...॥

[४] ···आदीनव-सञ्ञं भावेस्सन्ति···॥

[५] ···पहान-सञ्ञं भावेस्सन्ति···॥

[६] ···विराग-सञ्ञं भावेस्सन्ति···॥

[७] ···निरोध-सञ्ञं भावेस्सन्ति···॥

बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिङ्खा नो परिहानि । यावकीवञ्च भिक्खवे ! इमे सत्तआपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति । इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति । बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिप्रङ्खा, नो परिहानि ॥

(१६) छ भिक्खवे ! अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि । तं सुणाथ साधुकं मनसिकरोथ भासिस्सामी, ति ॥ 'एवं भन्ते,' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्च-स्सोसुं । भगवा एतदवोच—

[१[यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू मेत्तं कायकम्मं पच्चुपट्ठा-

हूँ ।.........। [१] भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु अनित्य-संज्ञा की भावना करेंगे ० [२] ० अनात्मसंज्ञा ०। [३] ० भागों में; अशुभसंज्ञा ०। [४] आदिनव (=दुष्परिणाम)-संज्ञा । [५] प्रहाण-(=त्याग) संज्ञा ०। [६] ० विराग-सज्ञा ०। [७] निरोधसंज्ञा० । ०।

(१६) "भिक्षुओ ! और भी छै अ-परिहाणीय-धर्मों को कहता हूँ ।......। [१] जब तक भिक्षु-सब्रह्मचारियों (=गुरुभाइयों) में गुप्त

पेस्सन्ति सब्रह्मचारीसु आवी चेव रहो च। वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि ॥

[२]…मेत्तं वचीकम्मं पच्चुपट्ठापेस्सन्ति…॥

[३]…मेत्तं मनोकम्मं पच्चुपट्ठापेस्सन्ति सब्रह्मचारीसु आवी चेव रहो च। वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि।

[४] यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू ये ते लाभा धम्मिका धम्म लद्धा अन्तमसो पत्तपरियापन्न मत्तंपि तथारूपे हि लाभेहि अप्पटिविभत्त -भोगी भविस्सन्ति सीलवन्तेहि सब्रह्मचारीहि साधारणभोगी। वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि ॥

[५] यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खूनं यानि तानि सीलानि अखण्डानि अछिद्दानि असबलानि अकम्मासानि भुजिस्सानि विञ्ञुप्प-सत्थानि अपरामट्ठानि समाधिसंवत्तनिकानि। तथा रूपेसु सीलेसु सील सामञ्ञगता विहरिस्सन्ति सब्रह्मचारीहि आवी चेव रहो च। वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि।

[६] यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खूनं या यं दिट्ठि अरिया

और प्रकट, मैत्रीपूर्ण कायिक कर्म रखेंगे ०। [२] ० मैत्रीपूर्ण वाचिक-कर्म रखेंगे ०। [३] ० मैत्रीपूर्ण मानसिक-कर्म रखेंगे ०। [४] ० जब तक भिक्षु धार्मिक, धर्म से प्राप्त जो लाभ हैं—अन्त में पात्र में चुपड़ने मात्र भी—वैसे लाभों को (भी) शीलवान् सब्रह्मचारी भिक्षुओं में बाँटकर भोग करने वाले होंगे ० [५] ० जब तक भिक्षु, जो वह अखंड (=निर्दोष) अ-छिद्र, अ-कल्मष=भुजिस्स (=सेवनीय), विद्वानों से प्रशंसित, अ-निन्दित समाधि की ओर (ले) जाने वाले शील हैं, वैसे शीलों से शील-श्रामण्य-युक्त हो सब्रह्मचारियों के साथ गुप्त भी प्रकट विहरेंगे ०। [६] जो वह आर्य (=उत्तम), नैर्याणिक (=पार कराने वाली), वैसा

निय्यानिका निय्याति तक्करस्स सम्मा दुक्खक्खयाय तथारूपाय दिट्ठिया दिट्ठि सामञ्ञगता विहरिस्सन्ति सब्रह्मचारीहि आवी चेव रहो च। वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा , नो परिहानि।

(१७) यावकीवञ्च भिक्खवे ! इमे छ अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति। इमेसु छसु अपरिहादियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति। वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानो ति।

(१८) तत्र सुदं भगवा राजगहे विहरन्तो गिज्झकूटे पब्बते एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिं कथं करोति। 'इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा। सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो। समाधिपरिभाविता पञ्जा महप्फला होति महानिसंसा। पञ्ञा परिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति। सेय्यथीदं,—कामासवा भवासवा, अविज्जासवा ति।'

करने वाले को अच्छी प्रकार दुःख-क्षय की ओर ले लाने वाली दृष्टि है, वैसी दृष्टि से दृष्टि-श्रामण्य-युक्त हो, सब्रह्मचारियों के साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेंगे।

(१७) भिक्षुओ! जब तक यह छै अपरिहाणीय-धर्म ०।

(१८) वहाँ राजगृह में गृध्रकूट-पर्वत पर विहार करते हुए भगवान् बहुत करके भिक्षुओं को यही धर्मकथा कहते थे—ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है। शील से परिभावित समाधि महा-फलवाली= महा-आनृशंसवाली होती है। समाधि से परिभावित प्रज्ञा महाफलवाली = महा-अनृशंसवाली होती है। प्रज्ञा से परिभावित चित्त आस्रवों*,—कामास्रव, भवास्रव, दृष्टि-आस्रव—से अच्छी तरह मुक्त होता है।

---

*आस्रव (=चित्त-मल)—भोग (=काम)—संबंधी, आवागमन (=भाव)-संबंधी, धारणा (=दृष्टि)-संबंधी।

(१९) अथ खो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि 'आयामानन्द ! येन अम्बलट्ठिका तेनुपसङ्कमिस्सामा, ति ।'

एवं भन्ते ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ।

(२०) अथ खो भगवा महता भिक्खु संघेन सद्धिं येन अम्बलट्ठिका तदवसरि । तत्र सुदं भगवा अम्बलट्ठिकायं विहरति राजागारके । तत्र पि सुदं भगवा अम्बलट्ठिकायं विहरन्तो राजागारके, एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिं कथं करोति । 'इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा । सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो । समाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा । पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति । सेय्यथिदं—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा, ति ।'

बुद्ध की अन्तिम यात्रा

अम्ब-लट्ठिका—

(१९) तब भगवान् ने राजगृह में इच्छानुसार विहार कर आयुष्मान आनन्द को आमंत्रित किया—

"चलो आनन्द ! जहाँ अम्बलट्ठिका† है, वहाँ चलें ।" "अच्छा, भन्ते !"......

(२०) तब भगवान् महान् भिक्षु-संघ के साथ जहाँ अम्बलट्ठिका थी, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् अम्बलट्ठिका में राजगारक में विहार करते थे । वहाँ ० राजगारक में भी भगवान् भिक्षुओं को बहुधा यही धर्म-कथा कहते थे—० ।

---

†सम्भवतः वर्तमान सिलाव ।

(२१) अथ खो भगवा अम्बलट्ठिकायं यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि 'आयामानन्द ! येन नालन्दा, तेनुपसङ्कमिस्सामा ति ।'

एवं भन्ते, ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ।

(२२) अथ खो भगवा महता भिक्खुसंघेन सद्धिं येन नालन्दा, तदवसरि । तत्र सुदं भगवा नालन्दायं विहरति पावारिकम्बवने । अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येन भगवा, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—'एवंपसन्नो अहं भन्ते ! भगवति । न चाहु न च

(२१) भगवान् ने अम्बलट्ठिका में यथेच्छ विहार कर आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया—

'चलो आनन्द! जहाँ नालन्दा है, वहाँ चलें ।" "अच्छा भन्ते!"...

बुद्ध के प्रति सारिपुत्र का उद्‌गार

नालन्दा—

(२२) तब भगवान् वहाँ से महाभिक्षु-संघ के साथ जहाँ नालन्दा थी, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् नालन्दा* में प्रावारिक-आम्रवन में विहार करते थे ।

तब आयुष्मान सारिपुत्र† जहाँ भगवान थे, वहाँ गये । जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान

---

* वर्तमान बड़गाँव, जिला पटना ।

† पृ० १२४ टि० १ से विरुद्ध होने से सारिपुत्र का इस वक्त होना सन्दिग्ध है ।

वा भगवता भविस्सति न चेतरहि विज्जति अञ्ञो 'समणो वा ब्राह्मणो भगवता भिय्यो व भिञ्ञातरो यदिदं सम्बोधियन्ति ।'

(२३) उलारा खो ते अयं सारिपुत्त ! असम्भिवाचा भासिता । एकंसो गहितो, सीहनादो नदितो । 'एवं पसन्नो अहं भन्ते ! भगवति । न चाहु, न च भविस्सति, न चेतरहि विज्जति अञ्ञो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवता भिय्यो भिञ्ञातरो यदिदं सम्बोधियन्ति ।'

(२४) 'किनु सारिपुत्त ! ये ते अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मा-सम्बुद्धा । सब्बे ते भगवन्तो चेतसा चेतो परिच्च विदिता । एवंसीला ते भगवन्तो अहेसुं इति पि । एवंधम्मा, एवंपञ्ञा, एवंविहारी, एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी ति ?

नो हेतं भन्ते !

सारिपुत्र ने भगवान से कहा—

"भन्ते! मेरा ऐसा विश्वास है—'संबोधि (=परमज्ञान) में भगवान से बढ़कर (=भूयस्तर) कोई दूसरा श्रमण ब्राह्मण न हुआ, न होगा, और न इस समय है' ।"

(२३) "सारिपुत्र ! तूने यह बहुत उदार (=बड़ी) = आर्षभी वाणी कही । बिल्कुल सिंहनाद...किया—'मेरा ऐसा ० ।'

(२४) सारिपुत्र ! जो वह अतीतकाल में अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हुए, क्या (तूने) उन सब भगवानों को (अपने) चित्त से जान लिया; कि वह भगवान् ऐसे शीलवाले, ऐसी प्रज्ञा वाले, ऐसे विहार वाले, ऐसी विमुक्ति वाले थे ?"

"नहीं, भन्ते!"

(२५) किं पन सारिपुत्त ! ये ते भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा । सब्बे ते भगवन्तो चेतसा चेतो परिच्च विदिता । एवंसीला ते भगवन्तो भविस्सन्ति इति पि । एवंधम्मा, एवंपञ्ञा, एवंविहारी, एवंविमुत्ता ते भगवन्तो भविस्सन्ति इति पी ति ?' ।।

नो हेतं भन्ते !

(२६) किं पन सारिपुत्त ! अहं एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो चेतसा चेतो परिच्च विदितो । एवंसीलो भगवा इति पि । एवंधम्मो, एवंपञ्ञो, एवंविहारी, एवंविमुत्तो भगवा इति पी ति ? ।

नो हेतं भन्ते !

(२७) एतरहि तं सारिपुत्त ! अतीतानागतपच्चुप्पन्नेसु अरहन्तेसु सम्मासम्बुद्धेसु चेतोपरियाय ञाणं नत्थि, अथ किञ्च रहि ते अयं सारिपुत्त ! उलारा आसम्भि वाचा भासिता । एकंसो गहितो सीहनादो नदितो—'एवंपसन्नो अहं भन्ते ! भगवति । न चाहु, न च भविस्सति, न

(२५) "सारिपुत्र! जो वह भविष्यकाल में अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध होंगे, क्या उन सब भगवानों को चित्त से जान लिया ० ?"

"नहीं, भन्ते!"

(२६) "सारिपुत्र ! इस समय मैं अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध हूँ, क्या चित्त से जान लिया, (कि मैं) ऐसी प्रज्ञा वाला ० हूँ ?"

"नहीं, भन्ते !"

(२७) "(जब) सारिपुत्र ! तेरा अतीत, अनागत (=भविष्य) प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धों के विषय में चेतःपरिज्ञान

न चेतरहि विज्जति अञ्ञो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवता भिय्यो, भिञ्ञतरो यदिदं सम्बोधियन्ति' ॥

(२८) 'न खो मे भन्ते ! अतीतानागतपच्चुप्पन्नेसु अरहन्तेसु सम्मासम्बुद्धेसु चेतोपरियायञाणं अत्थि। अपि च खो मे भन्ते ! धम्मन्वयो विदितो, सेय्यथापि भन्ते,—रञ्ञो पच्चन्तिमं नगरं दल्हद्धारं, दल्ह पाकारतोरणं एकद्वारं। तत्रस्स दोवारिको पण्डितो वियत्तो मेघावी अञ्ञातानं निवारेता ञातानं पवेसेता। सो तस्स नगरस्स समन्ता अनुपरियायपथं अनुक्कममानो न पस्सेय्य पाकारसन्धिं वा पाकारविवरं वा अन्तमसो बिलारनिक्खमम मत्तं पि। तस्स एव मस्स ये खो केचि ओलारिका पाणा इमं नगरं पविसन्ति वा निक्खमन्ति वा। सब्बे ते इमिनाव द्वारेन पविसन्ति वा निक्खमन्ति वा ति। एवमेव खो मे भन्ते ! धम्मन्वयो विदितो ॥ ये ते भन्ते, अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा, सब्बे ते भगवन्तो पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बली करणे, चतुसु सतिपट्ठानेसु सुपतिट्ठित चिता, सत्त बोज्झङ्गे यथाभूतं

(=पर=चित्तज्ञान) नहीं है; तो सारिपुत्र ! तूने क्यों यह बहुत उदार=आर्षभी वाणी कही ० ?"

(२८) "भन्ते ! अतीत-अनागत-प्रत्युत्पन्न अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धों में मुझे चेतः-परिज्ञान नहीं है ; किन्तु (सबकी) धर्म-अन्वय (=धर्म-समानता) विदित है। जैसे कि भन्ते ! राजा का सीमान्त-नगर दृढ़ नींववाला, दृढ़ प्राकार वाला, एक द्वार वाला हो। वहाँ अज्ञातों (=अपरिचितों) को निवारण करने वाला, ज्ञातों (=परिचितों) को प्रवेश कराने वाला पंडित =व्यक्त=मेधावी द्वारपाल हो। वहाँ नगर की चारों ओर, अनुपर्याय (=क्रमशः) मार्ग पर घूमते हुए (मनुष्य), प्राकार में अन्ततः बिल्ली के निकलने भर की भी संधि (=विविर) न पाये। उसको ऐसा हो—'जो कोई बड़े बड़े प्राणी इस नगर में प्रवेश करते हैं ; सभी इसी द्वार से ०।

भावेत्वा अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झिंसु। ये पि ते भन्ते! भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा। सब्बे ते भगवन्तो पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बली करणे, चतूसु सतिपट्ठानेसु सुपट्ठित चित्ता, सत्त बोज्झङ्गे यथाभूतं भावेत्वा, अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झिस्सन्ति। भगवा पि भन्ते! एतरहि अरहं सम्बुद्धो पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे, चतूसु सतिपट्ठानेसु सुपतिट्ठितचित्तो, सत्त बोज्झङ्गे यथाभूतं भावेत्वा अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धोति' ॥

(२९) तत्र पि सुदं भगवा नालन्दायं विहरन्तो पावारिकम्बवने एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिं कथं करोति। 'इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा। सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो। समाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा। पञ्ञा परिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति। सेय्यथीदं—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा ति।'

ऐसे ही भन्ते! मैंने धर्म-अन्वय जान लिया—'जो वह अतीतकाल में अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध हुए, वह सभी भगवान भी चित्त के उपक्लेश(=मल) प्रज्ञा को दुर्बल करने वाले, पाँचों नीवरणों को छोड़, चारों स्मृति-प्रस्थानों में चित्त को सु-प्रतिष्ठितकर, सात बोध्यंगों की यथार्थ से भावना कर, सर्वश्रेष्ठ (=अनुत्तर) सम्यक्-संबोधि (=परमज्ञान) का साक्षात्कार किये थे। और भन्ते! अनागत में जो भी अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध होंगे; वह सभी भगवान ०। भन्ते! इस समय भगवान अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध ने भी चित्त के उपक्लेश ०।"

(२९) वहाँ नालन्दा में प्रावारिक-आम्रवन में विहार करते, भगवान भिक्षुओं को बहुधा यही कहते थे ०।

(३०) अथ खो भगवा नालन्दायं यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'आयामानन्द ! येन पाटलिगामो तेनुपसङ्कमिस्सामा ति।'

'एवं भन्ते', ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ।

(३१) अथ खो भगवा महता भिक्खुसंघेन सद्धिं येन पाटलिगामो तदवसरि ।

अस्सोसुं खो पाटलिगामिया उपासका 'भगवा किर पाटलिगामं अनुप्पत्तो, ति'। अथ खो पाटलिगामिया उपासका येन भगवा, तेनुपसङ्कमिंसु। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं

पाटलि-ग्राम—

(३०) तब भगवान ने नालन्दा में इच्छानुसार विहारकर, आयुष्मान आनन्द को आमन्त्रित किया—

"चलो, आनन्द ! जहाँ पाटलि-ग्राम है, वहाँ चलें ।"

"अच्छा, भन्ते !"

(३१) तब भगवान महान भिक्षु संघ के साथ, जहाँ पा ट लि ग्रा म* था, वहाँ गये। पाटलिग्राम के उपासकों ने सुना कि भगवान पाटलिग्राम आये हैं। तब......उपासक जहाँ भगवान थे वहाँ गये। जाकर भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे......उपासकों ने भगवान से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान हमारे आवसथागार (=अतिथिशाला) को स्वीकार करें।"

---

* वर्तमान पटना।

निसिन्ना खो पाटलिगामिया उपासका भगवन्तं एतदवोचुं—'अधिवासेतु नो भन्ते ! भगवा आवसथागारन्ति'। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

(३२) अथ खो पाटलिगामिया उपासका भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन आवसथागारं, तेनुपसङ्कमिंसु। उपसङ्कमित्वा सब्बसन्थरिं सन्थतं आवसथागारं सन्थरित्वा आसनानि पञ्ञापेत्वा उदकमणिकं पतिट्ठापेत्वा तेल पदीपं आरोपेत्वा येन भगवा, तेनुपसङ्कमिंसु। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो पाटलिगामिया उपासका भगवन्तं एतदवोचुं। "सब्बसन्थरिं सन्थतं भन्ते, आवसथागारं आसनानि पञ्ञत्तानि। उदकमणिको पतिट्ठापितो। तेल पदीपो आरोपितो। यस्स दानि भन्ते, भगवा कालं मञ्ञती, ति।"

(३३) अथ खो भगवा सायण्ह समयं निवासेत्वा पत्तचीवरं आदाय सद्धिं भिक्खुसंघेन येन आवसथागारं, तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पादे

भगवान ने मौन से स्वीकार किया।

(३२) तब......उपासक भगवान की स्वीकृति जान आसन से उठ, भगवान को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर जहाँ आवसथागार था, वहाँ गये। जाकर आवसथागार में चारों ओर बिछौना बिछाकर, आसन लगा कर, जल के बर्तन स्थापित कर, तेल दीपक जला, जहाँ भगवान थे वहाँ गये। जाकर, भगवान को अभिवादन कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े हो पाटलिग्राम के उपासकों ने भगवान से यह कहा—"भन्ते ! आवसथागार में चारों ओर बिछौना बिछा दिया ०, अब जिसका भन्ते ! भगवान काल समझे।"

(३३) तब भगवान सायंकाल को पहिनकर पात्र चीवर ले, भिक्षु-संघ के साथ ० आवसथागार में प्रविष्ट हो बीच के खम्भे के पास पूर्वा-

पक्खालेत्वा आवसथागारं पविसित्वा मज्झिमं थम्भं निस्साय पुरत्थिमाभिमुखो निसीदि। भिक्खुसंघो पि खो पादे पक्खालेत्वा आवसथागारं पविसित्वा पच्छिमं भित्तिं निस्साय पुरत्थिमाभिमुखो निसीदि भगवन्तमेव पुरक्खत्वा। पाटलिगामिया पि खो उपासका पादे पक्खालेत्वा आवसथागारं पविसित्वा पुरथिमं भित्तिं निस्साय पच्छिमाभिमुखा निसीदिंसु भगवन्तमेव पुरक्खत्वा।

(३४) अथ खो भगवा पाटलिगामिये उपासके आमन्तेसि,— पञ्चिमे गहपतयो। आदीनवा दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। कतमे पञ्च ?

[१] इध गहपतयो ! दुस्सीलो सीलविपन्नो पमादाधिकरणं महतिं भोगजानिं निगच्छति। अयं पठमो आदीनवो दुस्सीलस्स सील विपत्तिया।

[२] पुन च परं गहपतयो ! दुस्सीलस्स सीलविपन्नस्स पापको कित्तिसद्दो अभुग्गच्छति। अयं दुतियो आदीनवो दुस्सीलस्स सील-विपत्तिया।

[३] पुन च परं गहपतयो ! दुस्सीलो सील विपन्नो यं यदेव

भिमुख बैठे। भिक्षुसंघ भी पैर पखार आवसथागार में प्रवेश कर, पूर्व की ओर मुँह कर पच्छिम की भीत के सहारे भगवान को आगे कर बैठा। पाटलिग्राम के उपासक भी पैर पखार आवसथागार में प्रवेश कर पच्छिम की ओर मुँह कर पूर्व भीत के सहारे भगवान को सामने करके बैठे।

(३४) तब भगवान ने...उपासकों को आमन्त्रित किया—

"गृहपतियों ! दुराचार के कारण दुःशील (=दुराचारी) के लिए यह पाँच दुष्परिणाम हैं। कौन से पाँच ? गृहपतियों ! [१] दुराचारी आलस्य करके बहुत से अपने भोगों को खो देता हैं, दुराचारी का दुराचार के कारण यह पहला दुष्परिणाम है। [२] और फिर...दुराचारी की निन्दा होती है०। [३] दुराचारी आचार-भ्रष्ट (पुरुष) क्षत्रिय

परिसं, उपसङ्कमति यदि खत्तिय परिसं, यदि ब्राह्मण परिसं, यदि गहपति-परिसं, यदि समण-परिसं अविसारदो उपसङ्कमति, मङ्कुभूतो। अयं ततियो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया।

[४] पुन च परं गहपतयो! दुस्सीलो सील विपन्नो संमूल्हो कालं करोति। अयं चतुत्थो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया।

[५] पुन च परं गहपतयो! दुस्सीलो सीलविप्पन्नो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। अयं पञ्चमो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया॥ इमे खो गहपतयो! पञ्च आदीनवा दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया॥

(३५) पञ्चिमे गहपतयो! आनिसंसा सीलवतो सीलसम्पदाय। कतमे पञ्च?

[१] इध गहपतयो! सीलवा सीलसम्पन्नो अप्पमादाधिकरणं महन्तं भोगक्खन्धं अधिगच्छति। अयं पठमो आनिसंसो सीलवतो सील-सम्पदाय॥

ब्राह्मण, गृहपति या श्रमण जिस किसी सभा में जाता है प्रतिभा रहित, मूक होकर ही जाता है ०। [४] ० मूढ़ रह मृत्यु को प्राप्त होता है ०। [५] और फिर गृहपतियों! दुराचारी आचार भ्रष्ट काया छोड़ मरने के बाद अपाय=दुर्गति=पतन=नरक में उत्पन्न होता है। दुराचारी के दुराचार के कारण यह पाँचवाँ दुष्परिणाम है। ०।

(३५) "गृहपतियों! सदाचारी के लिये सदाचार के कारण पाँच सुपरिणाम हैं। कौन से पाँच?—[१] गृहपतियो! सदाचारी अप्रमाद (=गफलत न करना) होकर बड़ी भोगराशि को (इसी जन्म में) प्राप्त करता है। सदाचारी को सदाचार के कारण यह पहला सुपरिणाम है।

[२] पुन च परं गहपतयो ! सीलवतो सीलसम्पन्नस्स कल्याणो कित्ति सद्दो अब्भुग्गच्छति। अयं दुतियो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय ॥

[३] पुन च परं गहपतयो ! सीलवा सीलसम्पन्नो यं यदेव परिसं उपसङ्कमति यदि खत्तिय परिसं, यदि ब्राह्मण परिसं, यदि गहपति-परिसं, यदि समण परिसं विसारदो उपसङ्कमति अमङ्कुभूतो। अयं ततियो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय ॥

[४] पुन च परं गहपतयो ! सीलवा सीलसम्पन्नो असंमुल्हो कालं करोति। अयं चतुत्थो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय ॥

[५] पुन च परं गहपतयो ! सीलवा सील सम्पन्नो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। अयं पञ्चमो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय ॥

इमे खो गहपतयो ! पञ्च आनिसंसा सीलवतो सीलसम्पदाया, ति।

(३६) अथ खो भगवा पाटलिगामिके उपासके बहुदेव रत्तिं धम्मिया

[२] ० सदाचारी का मंगल यश फैलता है ०। [३] ० जिस किसी सभा में जाता है मूक न हो विशारद बनकर जाता है ०। [४] ० मूढ़ न हो मृत्यु को प्राप्त होता है ०। [५] और फिर गृहपतियो ! सदाचारी सदाचार के कारण काया छोड़ मरने के बाद सुगति = स्वर्गलोक को प्राप्त होता है। सदाचारी को सदाचार के कारण यह पाँचवाँ सुपरिणाम है।

"गृहपतियो ! सदाचारी के लिये सदाचार के कारण यह पाँच सुपरिणाम हैं।"

(३६) तब भगवान ने बहुत रात तक... उपासकों को धार्मिक कथा

कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा संपहंसेत्वा उय्योजेसि । अभिक्कन्ता खो गहपतयो ! रत्ति यस्स दानि तुम्हे कालं मञ्ञथा, ति । एवं भन्ते, ति खो पाटलिगामिया उपासका भगवतो पटिस्सुत्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु ।

अथ खो भगवा अचिरपक्कन्तेसु पाटलिगामिकेसु उपासकेसु सुञ्ञागारं पाविसि ॥

से संदर्शित...समुत्तेजितकर...उद्योजित किया—"गृहपतियो ! रात क्षीण हो गई, जिसका तुम समय समझते हो (वैसा करो) ।"

"अच्छा भन्ते !" ......पाटलिग्राम-वासी ... * उपासक...आसन से उठकर भगवान को अभिवादन कर, प्रदक्षिणाकर, चले गये । तब पाटलिग्राम वाली उपासकों के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद भगवान शून्य-आगार में चले गये ।

---

* "भगवान कब पाटलिग्राम गये ?......श्रावस्ती में धर्मसेनापति (सारिपुत्र) का चैत्य बनवा, वहाँ से निकलकर राजगृह में वास करते, वहाँ आयुष्मान महामौद्गल्यायन का चैत्य बनवाकर, वहाँ से निकल अम्बलट्ठिका में वासकर ; अ-त्वरित चारिका से देश में विचरते ; वहाँ वहाँ एक एक रात वास करते, लोकानुग्रह करते, क्रमशः पाटलिग्राम पहुँचे । ...पाटलिग्राम में अजातशत्रु और लिच्छवि राजाओं के आदमी समय समय पर आकर घर के मालिकों को घर से निकाल कर (एक) मास भी आधे मास भी रहते थे । इससे पाटलिग्रास वासियों ने नित्य पीड़ित हो—उनके आने पर यह (हमारा) वासस्थान होगा—(सोच) ...नगर के बीच में महाशाला बनवाई । उसी का नाम था आवसथागार। वह उसी दिन समाप्त हुआ था ।"—अट्ठकथा ।

(३७) तेन खो पन समयेन सुनीध वस्कारा मगधमहामत्ता पाटलिगामे नगरं मापेन्ति वज्जीनं पटिबाहाय। तेन समयेन सम्बहुला देवता सहस्सस्सेव पाटलिगामे वत्थूनि परिग्गण्हन्ति। यस्मिं पदेसे महेसक्खा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति। महेसक्खानं तत्थ रञ्ञं राजमहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यस्मिं पदेसे मज्झिमा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, मज्झिमानं तत्थ रञ्ञं राजमहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यस्मिं पदेसे नीचा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, नीचानं तत्थ रञ्ञं राजमहामत्तानं चित्तादि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। अद्दसा खो भगवा दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन ता देवतायो सहस्सस्सेव पाटलिगामे वत्थूनि परिग्गण्हन्तियो।

(३८) अथ खो भगवा रत्तिया पच्चूस समयं पच्चुट्ठाय आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"कोनु खो आनन्द पाटलिगामे नगरं मापेतीति ?"

(२) पाटलिपुत्र का निर्माण

(३७) उस समय सुनीध (=सुनीथ) और वर्षकार मगध के महामात्य पाटलिग्राम में वज्जिवों को रोकने के लिये नगर बसा रहे थे। उस उमय अनेक हजार देवता पाटलिग्राम में वास ग्रहण कर रहे थे। जिस स्थान में महाप्रभावशाली (=महेसक्ख) देवताओं ने वास ग्रहण किया, उस स्थान में महाप्रभावशाली राजाओं और राजमहामन्त्रियों के चित्त में घर बनाने को होता है। जिस स्थान में मध्यम श्रेणी के देवताओं ने वास ग्रहण किया, उस स्थान में मध्यम श्रेणीं के राजाओं और राजमहामन्त्रियों के चित्त में घर बनाने को होता है। जिस स्थान में नीच देवताओं ने वास ग्रहण किया, उस स्थान में नीच राजाओं और राजमहामन्त्रियों के चित्त में घर बनाने को होता है।

(३८) भगवान ने रात के प्रत्यूष-समय (=भिनसार) को उठकर आयुष्यमान आनन्द को आमन्त्रित्त किया—

"सुनीध वस्सकारा भन्ते, मगधमहामत्ता पाटलिगामे नगरं मापेन्ति वज्जीनं पटिबाहाया ति।"

(३९) "सेय्यथापि आनन्द, देवेहि तावतिंसेहि सद्धिं मन्तेत्वा, एवमेव खो आनन्द, सुनीध वस्सकारा मगधमहामत्ता पाटलिगामे नगरं मापेन्ति वज्जीनं पटिबाहाय। इधाहं आनन्द, अद्दसं दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सम्बहुला देवतायो सहस्सेव पाटलिगामे वत्थूनि परिग्गण्हन्तियो। यस्मिं आनन्द, पदेसे महेसक्खा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, महेसक्खानं तत्थ रञ्ञं राजमहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यस्मिं पदेसे मज्झिमा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, मज्झिमानं तत्थ रञ्ञं राजमहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यस्मिं पदेसे नीचा देवता वत्थूनि परिग्गण्हन्ति, नीचानं तत्थ रञ्ञं राजमहामत्तानं चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतुं। यावता आनन्द, अरियं

"आनन्द ! पाटलिग्राम में कौन नगर बना रहा है ?"

"भन्ते ! सुनीध और वर्षकार मगध-महामात्य, वज्जियों को रोकने के लिए नगर बसा रहे हैं।"

(३९) "आनन्द ! जैसे त्रायस्त्रिंश देवताओं के साथ सलाह करके मगध के महामात्य सुनीध, वर्षकार, वज्जियों को रोकने के लिये नगर बना रहे हैं। आनन्द ! मैंने अमानुष दिव्य नेत्र से देखा—अनेक सहस्र देवता यहाँ पाटलिग्राम में वास्तु (=घर, वास) ग्रहण कर रहे हैं। जिस प्रदेश में महाशक्ति-शाली (=महेसक्ख) देवता वास ग्रहण कर रहे हैं, वहाँ महाशक्तिशाली राजाओं और राज-महामात्यों का चित्त, घर बनाने को लगेगा। जिस प्रदेश में मध्यम देवता वास ग्रहण कर रहे हैं, वहाँ मध्यम राजाओं और राज-महामात्यों का चित्त घर बनाने को लगेगा। जिस प्रदेश में नीच देवता०, वहाँ नीच राजाओं०। आनन्द ! जितने (भी) आर्य

आयतनं, यावता वणिप्पथो इदं अग्ग-नगरं भविस्सति पाटलिपुत्तं पुटभेदनं। पाटलिपुत्तस्स खो आनन्द, तयो अन्तराया भविस्सन्ति अग्गितो वा, उदकतो वा, मिथुभेदा वा" ति ॥

(४०) अथ खो सुनीध वस्सकारा मगधमहामत्ता येन भगवा, तेनुपसङ्कमिंसु। उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो सुनीधवस्सकारा मगधमहामत्ता भगवन्तं एतदवोचुं—'अधिवासेतु नो भन्ते, भवं गोतमो अज्जतनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसंघेना ति'। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन ॥

(४१) अथ खो सुनीधवस्सकारा मगधमहामत्ता भगवतो अधिवासनं विदित्वा येन सको आवसथो, तेनुपसङ्कमिंसु। उपसङ्कमित्वा सके

आयतन (=आर्यों के निवास) हैं, जितने भी वणिक्-पथ (=व्यापार मार्ग) हैं, (उनमें) यह पाटलिपुत्र, पुट-भेदन (=माल की गाँठ जहां तोड़ी जाय) अग्र (=प्रधान)-नगर होगा। पाटलिपुत्र के तीन अन्तराय (=शत्रु) होंगे—आग, पानी और आपस की फूट।"

(४०) तब मगध-महामात्य सुनीध और वर्षकार जहां भगवान थे, वहाँ गये; जाकर भगवान के साथ संमोदन कर.....एक ओर खड़े हुए.... भगवान से बोले—

"भिक्ष-संघ के साथ आप गौतम! हमारा आज का भात स्वीकार करें।"

भगवान ने मौन से स्वीकार किया।

(४१) तब ० सुनीध वर्षकार भगवान की स्वीकृति जान, जहाँ

आवसथे पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसुं—'कालो भो गोतम, निट्ठितं भत्तन्ति'॥

(४२) अथ खो भगवा पुब्बण्ह समयं निवासेत्वा पत्त चीवर मादाय सद्धिं भिक्खुसंघेन येन सुनीधवस्सकारानं मगधमहामत्तानं आवसथो तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो सुनीधवस्सकारा मगधमहामत्ता बुद्धपमुखं भिक्खुसंघ पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसुं सम्पवारेसुं। अथ खो सुनीधवस्सकारा मगध महामत्ता भगवन्तं भुत्ताविं ओणीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु एकमन्तं निसिन्नो खो सुनीधवस्सकारे मगध महामत्ते भगवा इमाहि गाथाहि अनुमोदि—

(४३) यस्मिं पदेसे कप्पेति, वासं पण्डितजातियो।
सीलवन्तेत्थ भोजेत्वा, सञ्ञते ब्रह्मचारियो॥

उनका आवसथ (=डेरा) था, वहाँ गये। जाकर अपने आवसथ में उत्त खाद्य-भोज्य तैयार करा (उन्होंने) भगवान को समय की सूचना दी...।

(४२) तब भगवान पूर्वाह्न समय पहनकर, पात्र चीवर ले भिक्षु संघ के साथ जहाँ मगध-महामात्य सुनीध और वर्षकार का आवसथ था वहाँ गये; जाकर बिछे आसन पर बैठे। तब सुनीध, वर्षकार ने बुद्ध प्रमु भिक्षु-संघ को अपने हाथ से उत्तम खाद्य-भोज्य से संतर्पित=संप्रवारि किया। तब ० सुनीध वर्षकार, भगवान के भोजन कर पात्र से हाथ ह लेने पर, दूसरा नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे मगध-महामात्य सुनीध, वर्षकार को भगवान ने इन गाथाओं से (दान अनुमोदन किया—

(४३) "जिस प्रदेश (में) पंडित पुरुष, शीलवान, संयमी,
ब्रह्मचारियों को भोजन कराकर वास करता है॥१॥

या तत्थ देवता आसुं, तासं दक्खिणमादिसे ।
ता पूजिता पूजयन्ति, मानिता मानयन्ति नं ॥

ततो नं अनुकम्पन्ति, माता पुत्तंव ओरसं ।
देवतानुकम्पितो पोसो, सदा भद्रानि पस्सती ति ॥

(४४) अथ खो भगवा सुनीधवस्सकारे मगधमहामत्ते इमाहि गाथाहि अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामि । तेन खो पन समयेन सुनीध-वस्कारा मगधमहामत्ता भगवन्तं पिट्ठितो अनुबद्धा होन्ति । येनज्ज समणो गोतमो द्वारेन निक्खमिस्सति, तं 'गोतमद्वारं' नाम भवि-स्सति । येन तित्थेन गङ्ग नदिं तरिस्सति, त 'गोतमतित्थं' नाम भविस्सती ति । अथ खो भगवा येन द्वारेन निक्खमि, तं गोतमद्वारं नाम अहोसि । अथ खो भगवा येन गङ्गा नदी, तेनुपसङ्कमि । तेन खो पन समयेन गङ्गा नदी पूरा होति । समतित्तिका काकपेय्या । अप्पेकच्चे मनुस्सा नावं

"वहाँ जो देवता हैं, उन्हें दक्षिणा (=दान) देनी चाहिये ।
वह देवता पूजित हो पूजा करते हैं, मानित हो मानते हैं ॥२॥

तब (वह) औरस पुत्र की भाँति उस पर अनुकम्पा करते हैं ।
देवताओं से अनुकम्पित हो पुरुष सदा मंगल देखता है ॥३॥"

(४४) तब भगवान सुनीध और वर्षकार को इन गाथाओं से अनुमोदन कर, आसन से उठकर चले गये ।

उस समय ० सुनीध और वर्षकार भगवान के पीछे पीछे चल रहे थे—'श्रमण गौतम आज जिस द्वार से निकलेंगे, वह गौतम-द्वार...होगा । जिस तीर्थ (=घाट) से गंगा नदी पार होंगे, वह गौतम-तीर्थ...होगा । तब भगवान जिस द्वार से निकले, वह गोतम-द्वार...हुआ । भगवान जहाँ गंगा-नदी है, वहाँ गये । उस समय गंगा करारों बराबर भरी, करार पर

परियेसन्ति । अप्पेकच्चे उलुम्पं परियेसन्ति । अप्पेकच्चे कुल्लं बन्धन्ति पारा पारं गन्तुकामा । अथ खो भगवा सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य, एवमेव गङ्गाय नदिया ओरिमतीरे अन्तरहितो पारिमतीरे पच्चुट्ठासि सद्धिं भिक्खुसंघेन । अद्दस खो भगवा ते मनुस्से अप्पेकच्चे नावं परियेसन्ते, अप्पेकच्चे उलुम्पं परियेसन्ते, अप्पेकच्चे कुल्लं बन्धन्ते पारा पारं गन्तुकामे । अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

(४५) ये तरन्ति अण्णवंसरं, सेतुं कत्वा न विसज्ज पल्ललानि ।
कुल्लं हि जनो पबन्धति, तिण्णा मेधाविनो जना ति ॥

पठमभाणवारं ॥ १ ॥

बैठे कौवे के पीने योग्य थी। कोई आदमी नाव खोजते थे, कोई ० बेड़ा (=उलुम्प) खोजते थे, कोई ० कूला (=कुल्ल) बाँधते थे। तब भगवान, जैसे कि बलवान पुरुष समेटी बाँह को (सहज ही) फैला दे, फैलाई बाँह को समेट ले, वैसे ही भिक्षु-संघ के साथ गंगा नदी के इस पार से अन्तर्धान हो, परले तीर पर जा खड़े हुए। भगवान ने उन मनुष्यों को देखा, कोई कोई नाव खोज रहे थे ०। तब भगवान इसी अर्थ को जान कर, उसी समय यह उदान कहा—

(४५) "(पंडित) छोटे जलाशयों (=पल्वलों) को छोड़ समुद्र और नदियों को सेतु से तरते हैं।

(जब तक) लोग कूला बाँधते रहते हैं, (तब तक) मेधावी जन तर गये रहते हैं"।

(इति) प्रथम भाणवार ॥ १ ॥

(४६) अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"आयामानन्द, येन कोटिगामो, तेनुपसङ्कमिस्सामा ति" ॥ 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि।

(४७) अथ खो भगवा महता भिक्खुसंघेन सद्धिं येन कोटिगामो, तदवसरि। तत्र सुदं भगवा कोटिगामे विहरति। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"चतुन्नं भिक्खवे! अरियसच्चानं अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च, कतमेसं चतुन्नं?

(४८) [१] दुक्खस्स भिक्खवे, अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च॥

[२] दुक्खसमुदयस्स भिक्खवे, अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च॥

कोटिग्राम—

(४६) तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमंत्रित किया—

"आओ आनन्द! जहाँ कोटिग्राम है, वहाँ चले।" "अच्छा, भन्ते!"

(४७) तब भगवान् भिक्षु-संघ के साथ जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् कोटि-ग्राम में विहार करते थे। भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—

"भिक्षुओं! चारों आर्य-सत्यों के अनुबोध = प्रतिवेध न होने से इस प्रकार दीर्घकाल से (यह) दौड़ना = संसरण (= आवागमन) 'मेरा और तुम्हारा' हो रहा है। कौन से चारों से?

(४८) भिक्षुओं! [१]दुःख आर्य-सत्य के अनुबोध-प्रतिबोध न होने से०।

[३] दुक्खनिरोधस्स भिक्खवे, अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ॥

[४] दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय भिक्खवे, अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धान सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ॥

तयिदं भिक्खवे, दुक्खंअरियसच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं । दुक्खसमुदयं अरियसच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं । दुक्खनिरोधं अरियसच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं । दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं । उच्छिन्ना भवतण्हा, खीणा भवनेत्ति । नत्थि दानि पुनब्भवो ति ।

(४९) इदमवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

चतुन्नं अरियसच्चानं, यथाभूतं अदस्सना ।
संसरितं दीघमद्धानं, तासु तास्वेव जातिसु ॥
तानि एतानि दिट्ठानि, भवनेत्ति समूहता ।
उच्छिन्नं मूलं दुक्खस्स नत्थि दानि पुनब्भवो ति ॥

[२] दुःख समुदाय ० । [३] दुःख निरोध ० । [४] दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद्० । भिक्षुओ ! सो इस दुःख आर्य-सत्य को अनु-बोध प्रतिबोध किया ०, (तो) भव-तृष्णा उच्छिन्न हो गई, भवनेत्री (=तृष्णा) क्षीण हो गई"

(४९) यह कहकर सुगत (=बुद्ध) ने और यह भी कहा—"चारों आर्य-सत्यों को ठीक से न देखने से,

उन उन योनियों में दीर्घकाल से आवागमन हो रहा है ।
जब ये देख लिये जाते हैं, तो भवनेत्री नष्ट हो जाती है,
दुःख की जड़ कट जाती है, और फिर आवागमन नहीं रहता ।

(५०) तत्र पि सुदं भगवा कोटिगामे विहरन्तो एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिकथं करोति 'इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा। सीलपरिभावितो ससाधि महप्फलो होति महानिसंसो। समाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा। पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति। सेय्यथीदं,—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा ति'।

(५१) अथ खो भगवा कोटिगामे यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि "आयामानन्द, येन नातिका, तेनुपसङ्कमिस्सामा ति"।

'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि।

अथ खो भगवा महता भिक्खु संघेन सद्धिं येन नातिका, तदवसरि।

तत्र पि सुदं भगवा नातिके विहरति गिञ्जकावसथे।

(५०) वहाँ कोटिग्राम में विहार करते ही भगवान्, भिक्षुओं को बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे यह शील ०। ०

नादिका—

(५१) तब भगवान् ने कोटिग्राम में इच्छानुसार विहारकर, आयुष्मान् आनन्द को आमंत्रित किया-

"आओ आनन्द ! जहाँ नादिका* (=नाटिका) है, वहाँ चलें।"
"अच्छा, भन्ते !"

तब भगवान् महान् भिक्षु संघ के साथ जहाँ नादिका है, वहाँ गये। वहाँ नादिका में भगवान् गिंजकावसथ में विहार करते थे।

---

*मिलाओ जनबसभसुत्त पृष्ठ १६०। दीर्घनिकाय (हिन्दी अनु०)

(५२) अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा, तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच। साल्हो नाम भन्ते, भिक्खु नातिके कालं कतो, तस्स का गति, को अभिसम्परायो ? नन्दा नाम भन्ते, भिक्खुनी नातिके कालं कता, तस्सा का गति, को अभिसम्परायो ? सुदत्तो नाम भन्ते, उपासको नातिके कालं कतो, तस्स का गति, को अभिसम्परायो ? सुजाता नाम भन्ते, उपासिका नातिके कालं कता, तस्स का गति को अभिसम्परायो ? कुक्कुटो नाम भन्ते, उपासको नातिके कालं कतो, तस्स का गति, को अभिसम्परायो ? कालिम्बो नाम भन्ते, उपासको नातिके कालं कतो, तस्स का गति, को अभिसम्परायो ? निकटो नाम भन्ते, उपासको······कटिस्सहो नाम भन्ते, उपासको······तुट्ठो नाम, भन्ते, उपासको······सन्तुट्ठो नाम भन्ते, उपासको······भद्दो नाम भन्ते, उपासको···सुभद्दो नाम भन्ते, ······उपासको नातिके कालं कतो, तस्स का गति, को अभिसम्परायो ति ?

धर्म-आदर्श

(५२) तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह कहा—

'भन्ते ! साल्ह भिक्षु नादिका में मर गया, उसकी क्या गति = क्या अभिसम्पराय (= परलोक) हुआ ? नन्दा भिक्षुणी ० सुदत्त उपासक ० सुजाता उपासिका ० ककुध उपासक ० कालिंग उपासक ० निकट उपासक ० कटिस्सह उपासक ० तुट्ठ उपासक ० सन्तुट्ठ उपासक ० भद्द उपासक ० भन्ते! सुभद्द उपासक नादिका में मर गया, उसकी क्या गति = क्या अभिसम्पराय हुआ ?"

(५३) साल्हो आनन्द, भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतो-विमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उप-सम्पज्ज विहासि। नन्दा नाम आनन्द, भिक्खूनी पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका तत्थपरिनिब्बायिनी अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका। सुदत्तो आनन्द, उपासको तिण्णं संयोजनानं परिक्खया राग-दोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सति। सुजाता आनन्द, उपासिका तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्ना अविनिपातधम्मा नियता सम्बोधिपरायणा। कुक्कुटो नाम आनन्द, उपासको पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओप-पातिको तत्थपरिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। कालिम्बो आनन्द, उपासको ०। निकटो आनन्द, उपासको ०। कटिस्सहो आनन्द, उपासको ०। तुट्ठो आनन्द, उपासको ०। सन्तुट्ठो आनन्द, उपासको ०। भद्दो आनन्द, उपासको ० सुभद्दो आनन्द, उपासको ०। पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको तत्थपरिनिब्बानी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। परोपञ्चासं आनन्द, नातिके उपासका

(५३) आनन्द! साल्ह भिक्षु इसी जन्म में आस्रवों (=चित्त-मलों) के क्षय से आस्रव-रहित चित्त की मुक्ति प्रज्ञा-विमुक्ति (=ज्ञानद्वारा मुक्ति) को स्वयं जानकर साक्षात् कर प्राप्त कर विहार कर रहा था। आनन्द! नन्दा भिक्षुणी पांच अवरभागीय संयोजनों के क्षय से देवता हो वहाँ से लौटने वाली (अनागामी) हो वहीं (देवलोक में) निर्वाण प्राप्त करेगी। सुदत्त उपासक आनन्द! तीन संयोजनों के क्षीण होने से, राग-द्वेष-मोह के दुर्बल होने से सकृदागामी हुआ, एक ही बार इस लोक में और आकर दुःख का अन्त करेगा। सुजाता उपासिका...तीन संयोजनों के क्षय से न गिरने वाले बोधि के रास्ते पर आरूढ़ हो स्रोतआपन्न हुई। ककुध० अनागामी ०। कालिंग ०। निकट ०। कटिस्सह ०। संतुट्ठ०। भद्द ०। उपासक आनन्द! पाँच अवरभागीय संयोजनों के क्षय से देवता हो वहाँ से न

कालङ्कता पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोनानं परिक्खया ओपपातिका तत्थ-परिनिब्बायिनो अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका। साधिका नवुति आनन्द, नातिके उपासका कालं कता तिण्णं संयोजनानं परिक्खया राग दोस मोहानं तनुत्ता सकदागामिनो सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति । सातिरेकानि आनन्द, पञ्चसतानि नातिके उपासका कालं कता तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्ना अविनिपातधम्मा नियता सम्बोधिपरायणा।

(५४) अनच्छरियं खो पनेतं आनन्द, यं मनुस्सभूतो कालं करेय्य तस्मिं येव कालं कते तथागतं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पुच्छिस्सथ। विहेसाहेसा आनन्द, तथागतस्स । तस्मातिहानन्द, धम्मादासं नाम धम्मपरियायं देसेस्सामि, येन समन्नागतो अरियसावको आकङ्खमानो अत्तनाव अत्तानं ब्याकरेय्य—"खीणनिरयोऽम्हि, खीणतिरच्छानयोनि, खीणपेत्तिविसयो, खीणापायदुग्गतिविनिपातो सोतापन्नोहमस्मि अविनिपात-धम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो ति"।

लौटनेवाला (=अनागामी)हो वहीं (देवलोक में) निर्वाण प्राप्त करने वाला है। आनन्द ! नादिका में पचास से अधिक उपासक मरे हैं, जो सभी ० अनागामी ० हैं । ० नब्बे से अधिक उपासक ० सकृदागामी ० । ० पाँच सौ से अधिक उपासक ० स्रोत-आपन्न ० ।

(५४) आनन्द ! यह ठीक नहीं, कि जो कोई मनुष्य मरे उसके मरने पर तथागत के पास आकर इस बात को पूछा जाय। आनन्द ! यह तथागत को कष्ट देना है। इसलिए आनन्द ! धर्म-आदर्श नामक धर्म-पर्याय (=उपदेश) उपदेशता हूँ। जिससे युक्त होने पर आर्यस्रावक स्वयं अपना व्याकरण (=भविष्यकथन) कर सकेगा—'मुझे नर्क नहीं, पशु नहीं, प्रेत-योनि नहीं, अपाय(=दुर्गति=) विनिपात नहीं। मैं न गिरने वाला बोधि के रास्तेपर स्रोतआपन्न हूं।'

(५५) कतमो च सो आनन्द, धम्मादासो, धम्मपरियायो? येन समन्नागतो अरियसावको आकङ्खमानो अत्तनाव अत्तानं ब्याकरेय्य—"खीणनिरयोम्हि, खीणतिरच्छान योनि, खीणपेत्तिविसयो, खीणापाय दुग्गतिविनिपातो, सोतापन्नोऽहमस्मि, अविनिपातधम्मो, नियतो सम्बोधि परायणो ति"।

[१] इधानन्द, अरियसावको बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति—"इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथी सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा ति"।

[२] धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति—"स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनयिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही ति।"

(५५) आनन्द! क्या है वह धर्मादर्शधर्म पर्याय०?—[१]*आनन्द! जो आर्यश्रावक बुद्ध में अत्यन्त श्रद्धायुक्त होता है—'वह भगवान् अर्हत्, सम्यक् संबुद्ध (=परमज्ञानी), विद्या-आचरण-युक्त, सुगत, लोकविद् पुरुषों के दमन करने में अनुपम चाबुक-सवार, देवताओं और मनुष्यों के उपदेशक बुद्ध (=ज्ञानी) भगवान् हैं।'

[२] ० धर्म में अत्यन्त श्रद्धा से युक्त होता है—भगवान् का धर्म स्वाख्यात (=सुन्दर रीति से कहा गया) है सांदृष्टिक (=इसी शरीर में फल देने वाला), अकालिक (=कालान्तर में नहीं सद्यः फलप्रद), एहिपस्सिक (=यहीं दिखाई देने वाला), औपनयिक (=निर्वाण के पास ले जाने

---

*यही तीनों वाक्य-समूह त्रिरत्न (=बुद्ध धर्म-संघ) की अनुस्मृति (=स्मरण), कही जाती है।

[३] संघे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति—"सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, उजुपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, ञायपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, सामिचिपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, यदिदं चत्तारि पुरिस-युगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला एस भगवतो सावकसंघो, आहुनेय्यो पाहुणेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा" ति।

[४] अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागतो होति। अखण्डेहि अछिद्देहि असबलेहि अकम्मासेहि भुजिस्सेहि विञ्ञुप्पसत्थेहि अपरामट्ठेहि समाधिसंवत्तनिकेहि। अयं खो सो आनन्द, धम्मादासो धम्मपरियायो येन समन्नागतो अरियसावको आकङ्खमानो अत्तनाव अत्तानं ब्याकरेय्य, खीणनिरयोम्हि, खीणतिरच्छान योनि, खीणपेत्ति-विसयो, खीणापायदुग्गतिविनिपातो, सोतापन्नोऽहमस्मि, अविनिपात-धम्मो, नियतो सम्बोधिपरायणो ति।

वाला), विज्ञ (पुरुषों) को अपने भीतर (ही) विदित होने वाला है।' [३] ० संघ में अत्यन्त श्रद्धा से युक्त होता है—'भगवान् का श्रावक (=शिष्य) संघ सुमार्गारूढ़ है, भगवान् का श्रावक-संघ सरल मार्ग पर आरूढ़ है, ० न्याय मार्ग पर आरूढ़ है, ० ठीक मार्ग पर आरूढ़ है, यह चार पुरुष युगल (स्रोत-आपन्न, सकृदागामी अनागामी और अर्हत्) और आठ पुरुष = पुद्गल हैं, यही भगवान् का श्रावक-संघ है। (जोकि) आह्वान करने योग्य है, पाहुना बनाने योग्य है, दान देने योग्य है, हाथ जोड़ने योग्य है, और लोक के लिये पूण्य (बोने) का क्षेत्र है। [४] और अखंडति, निर्दोष, निर्मल, निष्कलमष, सेवनीय, विज्ञ-प्रशंसित-आर्य (= उत्तम कान्त, शीलों (= सदाचारों से युक्त होता है। आनन्द! यह धर्मादर्श धर्मपर्याय है ०।"

तत्र पि सुदं भगवा नातिके विहरन्तो गिञ्जकावसथे एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिं कथं करोति—'इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा। सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो। समाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा। पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति। सेय्यथीदं,—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा' ति।

(५६) अथ खो भगवा नातिके यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'आयामानन्द, येन वेसाली, तेनुपसङ्कमिस्सामा' ति।

'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि।

(५७) अथ खो भगवा महता भिक्खुसंघेन सद्धिं येन वेसाली, तदवसरि। तत्र सुदं भगवा वेसालियं विहरति "अम्बपालिवने"।

वहाँ नातिका में विहार करते भी भगवान भिक्षुओं को यही धर्म कथा से उपदेश दिया।

(५६) तब भगवान् ने नातिका में इच्छानुसार विहार कर आयुष्मान् आनन्द को आमंत्रित किया—"आओ आनन्द ! जहाँ वैशाली है, वहाँ चलें ! अच्छा, भन्ते !"

अम्बपाली गणिका का भोजन

(५७) ० तब भगवान् महाभिक्षु-संघ के साथ जहाँ वैशाली थी वहाँ गये। वहाँ वैशाली में अम्बपाली-वन में विहार करते थे।

वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—

"भिक्षुओं ! स्मृति और संप्रजन्य के साथ विहार करो, यही हमारा अनुशासन है। कैसे...भिक्षु स्मृतिमान् होता है ? जब भिक्षुओं ! भिक्षु

तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"सतो भिक्खवे, भिक्खु विहरेय्य सम्पजानो। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी"। कथञ्च भिक्खवे, भिक्खु सतो होति? इध भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। वेदनासु··· चित्ते···धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झा दोमनस्सं। एवं खो भिक्खवे, भिक्खु सतो होति।

(५८) कथञ्च भिक्खवे, भिक्खु सम्पजानो होति? "इध भिक्खवे, भिक्खु अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी होति। आलोकिते विलोकिते सम्पजानकारी होति। समञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी होति। संघाटिपत्तचीवरधारणे सम्पजानकारी होति। असिते पीते खायिते सायिते सम्पजानकारी होति। उच्चारपस्सावकम्मे सम्पजानकारी होति। गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजान-

काया में काय-अनुपश्यो (=शरीर को उसकी बनावट के अनुसार केश-नख-मलमूत्र आदि के रूप में देखना) हो, उद्योगशील, अनुभव ज्ञान (=संप्रजन्य) युक्त, स्मृतिमान् लोक के प्रति लोभ और द्वेष हटाकर विहरता है। वेदनाओं (=सुख दुःख आदि) में वेदनानुपश्यी हो०। चित्त में चित्तानुपश्यी हो०। धर्मों में धर्मानुपश्यी हो०। इस प्रकार भिक्षु स्मृतिमान् होता है।

(५८) कैसे...संप्रज्ञ (=संपजान) होता है। जब...भिक्षु जानते हुये गमन-आगमन करता है। जानते हुये आवलोकन-विलोकन करता है। ०सिकोड़ना-फैलना ०। ० संघाटी-पात्र-चीवर को धारण करता हैं। ० आसन, पान, खादन आस्वादन करता है। ० पाखाना पेशाब करता हूं। चलते, खड़े होते, बैठते सोते, जागते, बोलते चुप रहते जानकर करने वाला होता है। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु संप्रज्ञानकारी होता है। इस प्रकार

कारी होति । एवं खो भिक्खवे, भिक्खु सम्पजानो होति । सतो भिक्खवे, भिक्खु विहरेय्य सम्पजानो। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी" ति।

(५९) अस्सोसि खो अम्बपाली गणिका—'भगवा किर वेसालिं अनुप्पत्तो वेसालियं विहरति मय्हं अम्बवने ति' । अथ खो अम्बपाली गणिका भद्दानि भद्दानि यानानि योजापेत्वा भद्दं भद्दं यानं अभिरुहित्वा भद्देहि भद्देहि यानेहि वेसालिया निय्यासि; येन सको आरामो, तेन पायासि। यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा याना पच्चोरोहित्वा पत्तिकाव येन भगवा, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।

एकमन्तं निसिन्नं खो अम्बपालिं गणिकं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि संपहंसेसि।

अथ खो अम्बपाली गणिका भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सिता समादपिता समुत्तेजिता संपहंसिता भगवन्तं एतदवोच,—

...संप्रज्ञ होता है। भिक्षुओं! भिक्षु को स्मृति और संप्रजन्य युक्त विहरना चाहिये, यही हमारा अनुशासन है।

(५९)अम्बपाली गणिका ने सुना—भगवान् वैशाली में आये हैं; और वैशाली में मेरे आम्रवन में विहार करते हैं। तब अम्बपाली गणिका सुन्दर सुन्दर (=भद्र) यानों को जुड़वाकर, एक सुन्दर यान पर चढ़ सुन्दर यानों के साथ वैशाली से निकली; और जहाँ उसका आराम था वहाँ चली। जितनी यान की भूमि थी, उतनी यान से जाकर, यान से उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिका को भगवान् ने धार्मिक-कथा से संदर्शित समुत्तोजित किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान से यह बोली—

"अधिवासेतु मे भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खु संघेना ति"।

अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

(६०) अथ खो अम्बपाली गणिका भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

(६१) अस्सोसुं खो वेसालिका लिच्छवी—'भगवा किर वेसालिं अनुप्पत्तो वेसालियं विहरति अम्बपालिवने ति'। अथ खो ते लिच्छवी भद्दानि भद्दानि यानानि योजापेत्वा भद्दं भद्दं यानं अभिरूहित्वा भद्देहि भद्देहि यानेहि वेसालिया निर्यिसु। तत्र एकच्चे लिच्छवी नीला होन्ति, नीलवण्णा, नीलवत्था, नीलालङ्कारा। एकच्चे लिच्छवी पीता होन्ति, पीतवण्णा, पीतवत्था, पीतालङ्कारा। एकच्चे लिच्छवी लोहिता होन्ति, लोहितवण्णा, लोहितवत्था, लोहितालङ्कारा। एकच्चे लिच्छवी ओदाता होन्ति ओदातवण्णा, ओदातवत्था, ओदातालङ्कारा।

"भन्ते! भिक्षु-संघ के साथ भगवान् मेरा कल का भोजन स्वीकार करें।"

भगवान् ने मौन से स्वीकार किया।

(६०) तब अम्बपाली गणिका भगवान् की स्वीकृति जान, आसन से उठ भगवान को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चली गई।

(६१) वैशाली के लिच्छवियों ने सुना—भगवान् वैशाली में आये हैं ०'। तब वह लिक्छवि ० सुन्दर यानों पर आरूढ़ हो ० वैशाली से निकले। उनमें कोई कोई लिच्छवि नीले = नील, वर्ण नील-वस्त्र, नील-अलंकार वाले थे। कोई कोई लिच्छवि पीले ० थे। ० लोहित (= लाल) ०। ० अवदात (= सफेद) ०। अम्बपाली गणिका ने तरुण

अथ खो अम्बपाली गणिका दहरानं दहरानं लिच्छवीनं अक्खेन अक्खं चक्केन चक्कं युगेन युगं पटिवट्टेसि। अथ खो ते लिच्छवी अम्बपालिं गणिकं एतदवोचुं,—किं जे अम्बपालि, दहरानं दहरानं लिच्छवीनं अक्खेन अक्खं चक्केन चक्कं युगेन युगं पटिवट्टेसी ति ?'

(६२) "तथा हि पन मे अय्यपुत्ता, भगवा निमन्तितो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसंघेना ति।"

(६३) "देहि जे अम्बपालि, एकं भत्तं सतसहस्सेना ति।"

(६४) "सचेपि मे अय्यपुत्त, वेसालिं साहारं दस्सथ, एवमहं तं भत्तं न दस्सामी ति।"

(६५) अथ खो ते लिच्छवी अङ्गुलिं फोटेसुं 'जितम्हा वत भो अम्बकाय, जितम्हा वत भो अम्बकाया ति!

तरुण लिच्छवियों के धुरों से धुरा, चक्को से चक्का, जुये से जुआ टकरा दिया। उन लिच्छवियों ने अम्बपाली गणिका से कहा—

"जे! अम्बपाली! क्यों तरुण तरुण (=दहर) लिच्छवियों के धुरों से धुरा टकराती है। ०"

(६२) "आर्य पुत्रो! क्योंकि मैने भिक्षु-संघ के साथ कल के भोजन के लिये भगवान् को निमन्त्रित किया है।"

(६३) "जे! अम्बपाली! सौ सजार (कार्षापण) लेकर इस भात (भोजन) को हमें कराने के लिये दे दे।"

(६४) "आर्य पुत्रो! यदि वैशाली जनपद भी दो, तो भी इस महान् भात को न दूंगी।

(६५) तब उन लिच्छवियों ने अंगुलियाँ फोड़ीं—

(६६) अथ खो ते लिच्छवी येन अम्बपालिवनं, तेन पायिंसु। अद्दस खो भगवा ते लिच्छवी दूरतोव आगच्छन्ते। दिस्वा भिक्खू आमन्तेसि— "येसं भिक्खवे, भिक्खूनं देवा तावतिंसा अदिट्ठा, ओलोकेथ भिक्खवे, लिच्छवीपरिसं, अपलोकेथ भिक्खवे, लिच्छवीपरिसं, उपसंहरथ भिक्खवे, लिच्छवीपरिसं तावतिंससदिसन्ति।

(६७) अथ खो ते लिच्छवी यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा याना पच्चोरोहित्वा पत्तिकाव येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो ते लिच्छवी भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि संपहंसेसि। अथ खो ते लिच्छवी भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सिता समादपिता समुत्तेजिता संपहंसिता भगवन्तं एतदवोचुं—

"अरे हमें अम्बिका ने जीत लिया, अरे! हमें अम्बिका ने वंचित कर दिया।"

(६६) तब वह लिच्छवि जहाँ अम्बपाली-वन था वहाँ गये। भगवान् ने दूर से ही लिच्छवियों को आते देखा। देखकर भिक्षुओं को आमंत्रित किया—

"अवलोकन करो भिक्षुओं ? लिच्छवियों की परिषद् को। अवलोकन करो भिक्षुओं ! लिच्छवियों की परिषद् को। भिक्षुओ! लिच्छवि-परिषद् को त्रायस्त्रिंश (देव) परिषद् समझो (= उप-संहरथ)।"

(६७) तब वह लिच्छवि० रथ से उतरकर पैदल ही जहाँ भगवान थे, वहाँ...जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे लिच्छविओं को भगवान् ने धार्मिक-कथा से ० समुत्तेजित ० किया। तब वह लिच्छवि ० भगवान् से बोले—

"अधिवासेतु नो भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसंघेना ति।"

(६८) अथ खो भगवा ते लिच्छवी एतदवोच—"अधिवुत्थं खो मे लिच्छवी स्वातनाय अम्बपालिया गणिकाय भत्तन्ति।"

(६९) अथ खो ते लिच्छवी अङ्गुलिं फोटेसुं—'जितम्हा वत भो अम्बकाय, जितम्हा वत भो अम्बकाया ति!'

अथ खो ते लिच्छवी भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु।

(७०) अथ खो अम्बपाली गणिका तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके आरामे पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि—"कालो भन्ते, निट्ठितं भत्तन्ति।"

"भन्ते! भिक्षु-संघ के साथ भगवान् हमारा कल का भोजन स्वीकार करें।"

(६८) "लिच्छवियो! कल तो, मैने अम्बपाली-गणिका का भोजन स्वीकर कर दिया है।"

(६९) तब उन लिच्छवियों ने अंगुलियाँ फोड़ीं—

"अरे हमें अम्बिका ने जीत लिया। अरे! हमें अम्बिका ने वंचित कर दिया।"

तब वह लिच्छवि भगवान् के भाषण को अभिनन्दित कर, आनुमोदित कर, आसन से उठ भगवान् को अभिवादन कर प्रदक्षिणाकर चले गये।

(७०) अम्बपाली गणिका ने उस रात के बीतने पर, अपने आराम में उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार कर, भगवान को समय से सूचित किया...।

(७१) अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसंघेन येन अम्बपालिया गणिकाय निवेसनं तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो अम्बपाली गणिका बुद्धपमुखं भिक्खु-संघं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि संपवारेसि। अथ खो अम्बपाली गणिका भगवन्तं भुत्ताविं ओणीपत्ततपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्ना खो अम्बपाली गणिका भगवन्तं एतदवोच—"इमाहं भन्ते, आरामं बुद्धपमुखस्स भिक्खुसंघस्स दम्मी ति"। पटिग्गहेसि भगवा आरामं।

अथ खो भगवा अम्बपालिं गणिकं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समा-दपेत्वा समुत्तेजेत्वा संपहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कमि।

(७२) तत्र सुदं भगवा वेसालियं विहरन्तो अम्बपालिवने एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिं कथं करोति, 'इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा; सील-परिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो। समाधिपरिभाविता पञ्ञा

(७१) भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र चीवर ले भिक्षु-संघ के साथ जहाँ अम्बपाली का स्थान था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। तब अम्बपाली गणिका ने बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ को अपने हाथ से उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा संतर्पित=संप्रवारित किया। तब अम्ब-पाली गणिका भगवान् के भोजन कर पात्र से हाथ खींच लेने पर, एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिका भगवान् से बोली—"भन्ते! मैं इस आराम को बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को देती हूं।"

भगवान् ने आराम को स्वीकार किया। तब भगवान् अम्बपाली को धार्मिक-कथा से० समुत्तेजित० कर, आसन से उठ कर चले गये।

(७२) वहाँ वैशाली में विहार करते भी भगवान् भिक्षुओं को

महप्फला होति महानिसंसा। पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति। सेय्यथींद—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा ति' ॥

(७३) अथ खो भगवा अम्बपालिवने यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'आयामानन्द, येन बेलुवगामको तेनुपसङ्कमिस्सामा ति'।

'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि।

अथ खो भगवा महता भिक्खुसंघेन सद्धिं येन बेलुवगामको तदवसरि। तत्र सुदं भगवा बेलुवगामके विहरति। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"एथ तुम्हे भिक्खवे, समन्ता वेसालिं यथामित्तं यथासन्दिट्ठं यथासम्भत्तं वस्सं उपेथ। अहं पन इधेव बेलुवगामके वस्सं उपगच्छामी ति"।

'एवं भन्ते ति खो ते भिक्खू भगवतो पटिस्सुत्वा समन्ता वेसालिं यथामित्तं यथासन्दिट्ठं यथासम्भत्तं वस्सं उपगञ्छुं। भगवा पन तत्थेव बेलुवगामके वस्सं उपगञ्छि।

बहुत करके यहाँ धर्म-कथा कहते थे ०।

बेलुव-ग्राम—

(७३) ० तब भगवान् महाभिक्षु-संघ के साथ जहाँ बेलुव-ग्रामक (=बिल्व-ग्राम) था, वहाँ गये वहाँ भगवान् बेलुव-गामक में विहरते थे। भगवान् ने वहाँ भिक्षुओं को आमंत्रित किया।

"आओ! भिक्षुओं! तुम वैशाली के चारों ओर मित्र, परिचित... देखकर वर्षावास करो। मैं यहीं वेलुव-ग्रामक में वर्षावास करूँगा।" "अच्छा, भन्ते!"...... भगवान् भी उसी वेलुव ग्राम में वर्षावास करने लगे।

(७४) अथ खो भगवतो वस्सूपगतस्स खरो आबाधो उप्पज्जि पबाळ्हा वेदना वत्तन्ति मारणन्तिका। ता सुदं भगवा सतो सम्पजानो अधिवासेसि अविहञ्ञमानो। अथ खो भगवतो एतदहोसि—"न खो मे तं पतिरूपं स्वाहं अनामन्तेत्वा उपट्ठाके अनपलोकेत्वा भिक्खुसंघं परिनिब्बायेय्यं। यन्नूनाहं इमं आबाधं विरियेन पटिप्पणामेत्वा जीवितसङ्खारं अधिट्ठाय विहरेय्यन्ति"॥

अथ खो भगवा तं आबाधंविरियेन पटिप्पणामेत्वा जीवितसङ्खारं अधिट्ठाय विहासि। अथ खो भगवतो सो आबाधो पटिप्पस्सम्भि।

(७५) अथ खो भगवा गिलाना वुट्ठितो, अचिरवुट्ठितो गेलञ्ञा विहारा निक्खम्म विहारपच्छायायं पञ्ञत्ते आसने निसीदि।

अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा

सख्त बीमारी

(७४) वर्षावास में भगवान् को कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई। भारी मरणान्तक पीड़ा होने लगी। उसे भगवान् ने स्मृति-संप्रजन्य के साथ बिना दुःख करते, स्वीकार (=सहन) किया। उस समय भगवान् को ऐसा हुआ—'मेरे लिये यह उचित नहीं, कि मैं उपस्थाकों (=सेवकों) को बिना जतलाये भिक्षु-संघ को बिना अवलोकन किये, परिनिर्वाण प्राप्त करूँ। क्यों न मैं इस आबाधा (=व्याधि) को हटाकर, जीवन-संस्कार (=प्राणशक्ति) को दृढ़तापूर्वक धारणकर, विहार करूँ। भगवान् उस व्याधि को वीर्य (=मनोबल) से हटाकर प्राण-शक्ति को दृढ़तापूर्वक धारणकर, विहार करने लगे। तब भगवान् की वह बीमारी शान्त हो गई।

(७५) भगवान् बीमारी से उठ, रोग से अभी अभी मुक्त हो, विहार (बाहर) निकलकर विहार की छाया में बिछे आसनपर बैठे। तब आयुष्मान्

भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—

(७६) "दिट्ठो मे भन्ते, भगवतो फासु; दिट्ठं मे भन्ते, भगवतो खमनीयं; अपि च मे भन्ते, मधुरकजातो विय कायो; दिसा पि मे न पक्खायन्ति। धम्मा पि मं नप्पटिभन्ति भगवतो गेलञ्ञेन; अपि च मे भन्ते, अहोसि काचिदेव अस्सासमत्ता 'न ताव भगवा परिनिब्बायिस्सति, न याव भगवा भिक्खुसंघं आरब्भ किञ्चिदेव उदाहरती' ति"।

(७७) किं पनानन्द, भिक्खुसंघो मयि पच्चासिंसति? देसितो आनन्द, मया धम्मो अनन्तरं अबाहिरं करित्वा नत्थानन्द, तथागतस्स धम्मेसु आचरियमुट्ठि। यस्स नून आनन्द, एवमस्स अहं भिक्खुसंघं परिहरिस्सामी ति वा ममुद्देसिको भिक्खुसंघो ति वा सो नून आनन्द, भिक्खुसंघं आरब्भ

आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह कहा—

(७६) "भन्ते! भगवान को सुखी देखा! भन्ते! मैंने भगवान् को अच्छा हुआ देखा! भन्ते! मेरा शरीर शून्य हो गया था। मुझे दिशायें भी सूझ न पड़ती थीं। भगवान् की बीमारी से (मुझे) धर्म (=बात) भी नहीं भान होते थे। भन्ते! कुछ आश्वासन मात्र रह गया था, कि भगवान् तब तक परिनिर्वाण नहीं प्राप्त करेंगे; जब तक भिक्षु-संघ को कुछ कह न लेंगे।"

(७७) "आनन्द! भिक्षु संघ मुझसे क्या चाहता है? आनन्द! मैंने न-अन्दर न-बाहर करके धर्म-उपदेश कर दिये। आनन्द! धर्मों में तथागत को (कोई) आ चा र्य मु ष्टि (=रहस्य) नहीं है। आनन्द! जिसको ऐसा हो कि मैं भिक्षु-संघ को धारण करता हूं, भिक्षु-संघ मेरे उद्देश्य से है,

किञ्चिदेव उदाहरेय्य । तथागतस्स खो आनन्द, न एवं होति--"अहं भिक्खु संघं परिहरिस्सामी ति वा ममुद्देसिको भिक्खुसंघो ति वा" । किं आनन्द, तथागतो भिक्खुसंघं आरब्भ किञ्चिदेव उदाहरिस्सति ?

अहं खो पनानन्द, एतरहि जिण्णो बुद्धो महल्लको अद्धगतो वयो-अनुप्पत्तो। आसीतिको मे वयो वत्तति। सेय्यथापि आनन्द, जज्जरसकटं वेधमिस्सकेन यापेति, एवमेव खो आनन्द, वेधमिस्सकेन मञ्ञे तथागतस्स कायो यापेति । यस्मिं आनन्द, समये तथागतो सब्बनिमित्तानं अमनसिकारा एकच्चानं वेदनानं निरोधा अनिमित्तं चेतोसमाधिं उपसम्पज्ज विहरति, फासुतरो आनन्द, तस्मिं समये तथागतस्स कायो होति । तस्मा-तिहानन्द अत्तदीपा विहरथ अत्तसरणा अनञ्ञसरणा। धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्ञसरणा ।

कथंचानन्द, भिक्खु अत्तदीपो विहरति अत्तसरणो अनञ्ञसरणो ? धम्मदीपो धम्मसरणो अनञ्ञसरणो ?

इधानन्द भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं...वेदनासु...पे... चित्तेसु...पे... धम्मेसु ध-म्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमन-

वह जरूर आनन्द ! भिक्षु-संघ के लिये कुछ कहे। आनन्द तथागत को ऐसा नहीं है...आनन्द ! तथागत भिक्षु-संघ के लिये क्या कहेंगे ? आनन्द! मैं जीर्ण = वृद्ध = महल्लक = अध्वगत = वयःप्राप्त हूं । अस्सी वर्ष की मेरी उम्र है। आनन्द ! जैसे पुरानी गाड़ी (=शकट) बाँध-बूँधकर चलती है, ऐसे ही आनन्द ! मानों तथागतका शरीर बाँध-बूंधकर चल रहा है। आनन्द ! जिस समय तथागत सारे निमित्तों (=लिंगों) को मन में न करने से, किन्हीं किन्हीं वेदनाओं के निरुद्ध होने से, निमित्त-रहित चित्तकी समाधि (=एकाग्रता) को प्राप्त हो विहरते हैं, उस समय......तथागत का

स्सं। एवं खो आनन्द भिक्खु अत्तदीपो विहरति अत्तसरणो अनञ्ञसरणो; धम्मदीपो धम्मसरणो अनञ्ञसरणो। येहि केचि आनन्द, एतरहि वा मम वा अच्चयेन अत्तदीपा विहरिस्सन्ति अत्तसरणा अनञ्ञसरणा, धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्ञसरणा तमतग्गे मे ते आनन्द, भिक्खू भविस्सन्ति ये केचि सिक्खाकामा ति"।

दुतियभाणवारं ।२।

(७८) अथ खो भगवा पुब्बण्ह समयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय वेसालिं पिण्डाय पाविसि। वेसालियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपात-पटिक्कन्तो आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'गण्हाहि आनन्द, निसीदनं। येन चापालचेतियं, तेनुपसङ्कमिस्साम दिवाविहाराया ति'।

(७९) 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा

शरीर अच्छा (=फासुकत) होता है। इसलिये आनन्द! आत्मदीप=आत्मशरण=अनन्यशरण, धर्मदीप=धर्म-शरण=अनन्य-शरण होकर विहरो। कैसे आनन्द! भिक्षु आत्मशरण० होकर विहरता है? आनन्द! भिक्षु काया में कायानुपश्यी ०*।"

(इति) द्वितीय भाणवार ।।२।।

(७८) तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहनकर पात्र चीवर ले वैशाली में भिक्षा के लिये प्रविष्ट हुए। वैशाली में पिंडचार कर, भोजनोपरान्त...... आयुष्मान् आनन्द से बोले—

"आनन्द! आसनी उठाओ, जहाँ **चापाल-चैत्य** है, वहाँ दिन के विहार के लिये चलेंगे।"

(७९) "अच्छा भन्ते।"—कह...आयुष्मान् आनन्द आसनी ले

---

* देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ पृष्ठ १९० (दीघनिकाय)।

निसीदनं आदाय भगवन्तं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धि। अथ खो भगवा येन चापालं चेतियं, तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। आयस्मा पि खो आनन्दो भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं भगवा एवदवोच,—"रमणीया आनन्द वेसाली, रमणीयं उदेनं चेतियं, रमणीयं गोतमकं चितियं, रमणीयं सत्तम्बं चेतियं, रमणीयं बहुपुत्तं चेतियं, रमणीयं सारन्ददं चेतियं, रमणीयं चापालं चेतियं"।

(८०) "यस्स कस्स चि आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो कप्पं वा तिट्ठेय्य, कप्पावसेसं वा। तथागतस्स खो पन आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय, कप्पावसेसं वा ति"।

(८१) एवं पि खो आयस्मा आनन्दो भगवता ओळारिके निमित्ते

भगवान् के पीछे पीछे चले। तब भगवान् जहाँ चापाल-चैत्य था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। आयुष्मान् आनन्द भी अभिवादन कर......। एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द से भगवान् ने यह कहा— आनन्द! वैशाली रमणीय है, ०/० चापाल चैत्य रमणीय है।

(८०) "आनन्द! जिसने चार ऋद्धिपाद (=योगसिद्धियाँ) साधे हैं, बढ़ा लिये हैं, रास्ता कर लिये हैं, घर कर लिये हैं; अनुत्थित, परिचित और सुसमारब्ध कर लिये हैं, यदि वह चाहे तो कल्प भर ठहर सकता है, या कल्प के बचे (काल) तक। तथागत ने भी आनन्द! चार ऋद्धिपाद साधे हैं ०, यदि तथागत चाहें तो कल्प भर ठहर सकते हैं या कल्प के बचे (काल) तक।"

(८१) ऐसे स्थूल संकेत करने पर भी, स्थूलतः प्रकट करने पर भी

कयिरमाने, ओळारिके ओभासे कयिरमाने नासक्खि पटिविज्झितुं। न भगवन्तं याचि—"तिट्ठतु भन्ते भगवा कप्पं; तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानन्ति"। यथातं मारेन परियुट्ठितचित्तो।

(८२) दुतियम्पि खो भगवा ०। ततियम्पि खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'रमणीया आनन्द वेसाली, रमणीयं उदेनं चेतियं, रमणीयं गोतमकं चेतियं, रमणीयं सत्तम्बं चेतियं, रमणीयं बहुपुत्तं चेतियं रमणीयं, सारन्ददं चेतियं, रमणीयं चापालं चेतियं।" "यस्स कस्सचि आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा सो आकङ्खमानो कप्पं वा तिट्ठेय्य, कप्पावसेसं वा। तथागतस्स खो आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य, कप्पावसेसं वा ति।"

एवं पि खो आयस्मा आनन्दो भगवतो ओळारिके निमित्ते कयिरमाने, ओलारिके ओभासे कयिरमाने नासक्खि पटिविज्झितुं। न भगवन्तं याचि—'तिट्ठतु भन्ते, भगवा कप्पं,तिट्ठतु सुगतो कप्पं, बहुजनहिताय बहुज-

आयुष्मान् आनन्द न समझ सके, और उन्होंने भगवान् से न प्रार्थना की—"भन्ते! भगवान् बहुजन-हितार्थ बहुजन-सुखार्थ लोकानुकम्पार्थ देव-मनुष्यों के अर्थ-हित-सुख के लिये कल्प भर ठहरे"; क्योंकि मारने उनके मन को फेर दिया था।

(८२) दूसरी बार भी भगवान् ने कहा—"आनन्द! जिसने चार ऋद्धिपाद०।

न सुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखायदेवमनुस्सानन्ति; यथातं मारेन परियुट्ठितचित्तो।

(८३) अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि,—'गच्छ त्वं आनन्द, यस्स दानि कालं मञ्ञसी ति'।

(८४) 'एवं भन्ते', ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा अविदूरे अञ्ञतरस्मि रुक्खमूले निसीदि।

(८५) अथ खो मारो पापिमा अचिरपक्कन्ते आयस्मन्ते आनन्दे येन भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो मारो पापिमा भगवन्तं एतदवोच—"परिनिब्बातु दानि, भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो। परिनिब्बानकालो दानि, भन्ते, भगवतो। भासिता खो पनेसा भन्ते, भगवता वाचा—'न तावाहं पापिम, परिनिब्बायिस्सामि याव

तीसरी बार भी भगवान् ने कहा—"आनन्द! जिसने चार ऋद्धिपाद०।

(८३) तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को संबोधित किया—"जाओ, आनन्द! जिसका काल समझते हो।"

(८४) "अच्छा, भन्ते!"—कह आयुष्मान् आनन्द भगवान् को उत्तर दे आसन से उठ भगवान् को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर, न-बहुत-दूर एक वृक्ष के नीचे बैठे।

निर्वाण की तैयारी

(८५) तब आयुष्मान् आनन्द के चले जाने के थोड़े ही समय बाद पापी (=दुष्ट) मार जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर एक ओर खड़ा

मे भिक्खू न सावका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मपटिपन्ना सामीचिपटिपन्ना अनुधम्मचारिनो सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञापेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ती' ति। एतरहि खो पन भन्ते, भिक्खू भगवतो सावका वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मपटिपन्ना सामीचिपटिपन्ना अनुधम्मचारिनो सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खन्ति देसेन्ति पञ्ञापेन्ति पट्ठपेन्ति विवरन्ति विभजन्ति उत्तानीकरोन्ति उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेन्ति। परिनिब्बातु दानि भन्ते, भगवा, परिनिब्बातु सुगतो। परिनिब्बान-कालो दानि भन्ते, भगवतो।

भासिता खो पनेसा भन्ते, भगवता वाचा—'न तावाहं पापिम, परिनिब्बायिस्सामि याव मे भिक्खुनियो न साविका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मपटिपन्ना सामिचिपटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञापेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति

हुआ। एक ओर खड़े पापी मारने भगवान् से यह कहा—

"भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाण को प्राप्त हों, सुगत परिनिर्वाण को प्राप्त हों। भन्ते! यह भगवान् के परिनिर्वाण का काल है। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी! मैं तब तक परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरे भिक्षु श्रावक व्यक्त (=पंडित), विनययुक्त, विशारद, बहुश्रुत, धर्म-धर, धर्मानुसार धर्म मार्ग पर आरूढ़, ठीक मार्ग पर आरूढ़, अनुधम्मचारी न होंगे, अपने सिद्धान्त (=आचार्यक) को सीख कर उपदेश, आख्यान, प्रज्ञापन (=समझाना), प्रतिष्ठापन, विवरण=विभजन,

उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ती ति' ॥

एतरहि खो पन भन्ते, भिक्खुनियो भगवतो साविका वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मपटिपन्ना सामिचिपटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खन्ति देसेन्ति पञ्ञापेन्ति पट्ठपेन्ति विवरन्ति विभजन्ति उत्तानी करोन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेन्ति। परिनिब्बातु दानि भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो, परिनिब्बानकालो दानि भन्ते, भगवतो।

भासिता खो पनेसा भन्ते, भगवता वाचा,—'न तावाहं पापिम! परिनिब्बायिस्सामि याव मे उपासका न सावका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मपटिपन्ना सामिचिपटिपन्ना अनुधम्मचारिनो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञापेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ती ति ॥'

एतरहि खो पन भन्ते, उपासिका भगवतो साविका वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मपटिपन्ना सामिचिपटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खन्ति देसेन्ति पञ्ञापेन्ति

सरलीकरण न करने लगेंगे, दूसरे के उठाये आक्षेप को धर्मानुसार खंडन करके प्रातिहार्य (=युक्ति) के साथ धर्म का उपदेश न करने लगेंगे।' इस समय भन्ते! भगवान् के भिक्षु श्रावक० प्रातिहार्य के साथ धर्म का उपदेश करते हैं। भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाण को प्राप्त हों०। भन्ते!

पट्ठपेन्ति विवरन्ति विभजन्ति उत्तानीकरोन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेन्ति ॥ परिनिब्बातु दानि भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो; परिनिब्बानकालो दानि भन्ते, भगवतो ।

भासिता खो पनेसा भन्ते, भगवतो वाचा,—'न तावाहं पापिम, परिनिब्बायिस्सामि याव मे उपासिका न साविका भविस्सन्ति, वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मपटिपन्ना सामीचिपटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा अचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञापेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ती ति' ।

एतरहि खो पन भन्ते, उपासिका भगवतो साविका वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मपटिपन्ना सामीचिपटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खन्ति देसेन्ति पञ्ञापेन्ति पट्ठपेन्ति विवरन्ति विभजन्ति उत्तानीकरोन्ति, उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेन्ति । परिनिब्बातु दानि भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो; परिनिब्बानकालो दानि भन्ते, भगवतो ति ।

भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी! मैं तब तक परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरी भिक्षुणी, श्राविकायें० प्रातिहार्य के साथ धर्म का उपदेश न करने लगेंगी।' इस समय०। भन्ते ! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी ! मैं तब तक परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होऊँगा। जब तक मेरे उपासक श्रावक०।' इस समय०। भन्ते ! भगवान यह बात कह चुके हैं—'पापी मैं तब तक परिनिर्वाण को नहीं होऊँगा, जब तक मेरी उपासिका श्राविकायें ०।' इस समय ०। भन्ते ! भगवान् यह बात कह

भासिता खो पनेसा भन्ते, भगवतो वाचा,—'न ताबाहं पापिम, परिनिब्बायिस्सामि याव मे इदं ब्रह्मचरियं न इद्धञ्चेव भविस्सति फीतञ्च वित्थारिकं बाहुजञ्ञं पुथुभूतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितन्ति'। एतरहि खो पन भन्ते, भगवतो ब्रह्मचरियं इद्धञ्चेव फीतञ्च वित्थारिकं बाहुजञ्ञं पुथुभूतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं। परिनिब्बातु दानि भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो; 'परिनिब्बानकालो दानि भन्ते, भगवता'ति।'

(८६) एवं वुत्ते भगवा मारं पापिमन्तं एतदवोच,—"अप्पोस्सुक्को त्वं पापिम ! होहि, न चिरं तथागतस्य परिनिब्बानं भविस्सति, इतो तिण्णं मासानं अच्चयेन तथागतो परिनिब्बायिस्सती ति।"

(८७) अथ खो भगवा चापाले चेतिये सतो सम्पजानो आयुसङ्खारं ओस्सजि, ओस्सट्ठे च भगवता आयुसङ्खारे महाभूमिचालो अहोसि भिंसनको सलोमहंसो। देवदुन्दुभियो च फलिंसु। अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

चुके हैं—'पापी ! मैं तब तक परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक कि यह ब्रह्मचर्य (=बुद्धधर्म) ऋद्ध (=उन्नत) स्फीत, विस्तारित, बहुजन-गृहीत, विशाल, देवताओं और मनुष्यों तक सुप्रकाशित न हो जायेगा।' इस समय भन्ते ! भगवान् का ब्रह्मचर्य ०।"

(८६) ऐसा कहने पर भगनान् पापी मार से यह कहा—"पापी! बेफिक्र हो, न-चिर ही तथागत का परिनिर्वाण होगा। आज से तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे।"

(८७) तब भगवान ने चापाल चैत्य में स्मृति-संप्रजन्य के साथ आयु संस्कार(=प्राण-शक्ति) को छोड़ दिया। जिस समय भगवान ने आयु-संस्कार छोड़ा उस समय भीषण रोमांचकारी महान् भूचाल हुआ, देवदुन्दुभियाँ बजीं। इस बात को जानकर भगवान ने उसी समय यह उदान कहा—

(८८) तुलमतुलञ्च सम्भवं, भवसङ्खारमवस्सजि मुनि ।
अज्झत्तरतो समाहितो, अभिन्दि कवचमिवत्तसम्भवन्ति ॥

(८९) अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—"अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो। महा वतायं भूमिचालो, सुमहा वतायं भूमिचालो भिंसनको सलोमहंसो, देव-दुन्दुभियो च फलिंसु । को नु खो हेतु को पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाया" ति ; अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—

(९०) "अच्छरियं भन्ते अब्भुतं भन्ते, महा वतायं भन्ते! भूमिचालो । सुमहा बतायं भन्ते, भूमिचालो भिंसनको सलोमहंसो । देवदुन्दुभियो च फलिंसु को नु खो भन्ते, हेतु, को पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाया" ति ?

(८८) "मुनि ने अतुल-तुल उत्पन्न भव-संस्कार) = जीवन शक्ति को छोड़ दिया ।

अपने भीतर रत और एकाग्रचित्त हो (उन्होंने) अपने साथ उत्पन्न कवच को तोड़ दिया ।"

(८९) तब आयुष्मान् आनन्द को ऐसा हुआ—"आश्चर्य है! अद्भुत है!! यह महान् भूचाल है । सु-महान् भूचाल है । भीषण रोमांचकारी है ।देवदुन्दुभियाँ बज रही हैं । (इस)महान् भूचाल के प्रादुर्भाव का क्या हेतु=क्या प्रत्यय है ?" तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने भगवान से यह कहा—

(९०) "आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! यह महान् भूचाल आया ० क्या हेतु=क्या प्रत्यय है ?"

"अट्ठ खो इमे आनन्द, हेतू अट्ठ पच्चया महतो भूमिचालस्स पातु-भावाय। कतमे अट्ठ ?

[१] अयं आनन्द, महापथवी उदके पतिट्ठिता। उदकं वाते पतिट्ठितं। वातो आकासट्ठो होति। होति सो खो आनन्द, समयो यं महावाता वायन्ति। महावाता वायन्ता उदकं कम्पेन्ति। उदकं कम्पितं पठविं कम्पेति। अयं पठमो हेतु, पठमो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय ॥

[२] पुन च परं आनन्द, समणो वा होति ब्राह्मणो वा इद्धिमा चेतोवसिप्पत्तो देवो वा महिद्धिको महानुभावो। तस्स परित्ता पथवीसञ्ञा भाविता होति। अप्पमाणा आपोसञ्ञा। सो इमं पथविं कम्पेति संकम्पेति संपकम्पेति संपवेधेति। अयं दुतियो हेतु, दुतियो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय ॥

[३] पुन च परं आनन्द, यदा बोधिसत्तो तुसिता काया चवित्वा सतो सम्पजानो मातुकुच्छिं ओक्कमति, तदायं पठवी कम्पति संकम्पति

"आनन्द! महान् भूचाल के प्रादुर्भाव के ये आठ हेतु = आठ प्रत्यय होते हैं। कौन से आठ [१] आनन्द! यह यहाँ पृथिवी जलपर प्रतिष्ठित है, जल वायु पर प्रष्ठित है, वायु आकाश में स्थित है। किसी समय आनन्द! महावात (= तूफान) चलता है। महावात के चलने पर पानी कंपित होता है। हिलता पानी पृथिवी को डुलाता है। आनन्द महा-भूचाल के प्रादुर्भाव का यह प्रथम हेतु = प्रथम प्रत्यय है। [२] और फिर आनन्द! कोई श्रमण या ब्राह्मण ऋद्धिमान् चेतोवशित्व (योग-बल) को प्राप्त होता है, अथवा कोई दिव्यबलधारी = महानुभाव देवता होता है! उसने पृथिवी-संज्ञा की थोड़ी सी भावना की होती है, और जल-संज्ञा की बड़ी भावना। वह (अपने योग बल से) पृथिवी को कंपित = संकंपित = संप्रकंपित = संप्रवेपित करता है। ० यह द्वितीय हेतु है। [३] ० जब

संपकम्पति संपवेधति। अयं ततियो हेतु ततियो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय।

[४] पुन च परं आनन्द, यदा बोधिसत्तो सतो सम्पजानो मातुकुच्छिस्मा निक्खमति, तदायं पठवी कम्पति संकम्पति संपकम्पति संपवेधति। अयं चतुत्थो हेतु, चतुत्थो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय॥

[५] पुन च परं आनन्द, यदा तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झति, तदायं पठवी कम्पति संकम्पति संपकम्पति संपवेधति। अयं पञ्चमो हेतु, पञ्चमो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय॥

[६] पुन च परं आनन्द! यदा तथागतो अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तेति, तदायं पठवी कम्पति संकम्पति संपकम्पति संपवेधति। अयं छट्ठो हेतु, छट्ठो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय॥

[७] पुन च परं आनन्द! यदा तथागतो सतो सम्पजानो आयुसङ्खारं ओस्सज्जति, तदायं पठवी कम्पति संकम्पति संपकम्पति संपवेधति। अयं सत्तमो हेतु, सत्तमो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय॥

बोधिसत्व तुषित देव लोक से च्युत हो होश-चेत के साथ माता की कोख में प्रविष्ट होते हैं। ० यह तृतीय०। [४] ० जब बोधिसत्व होश-चेत के साथ माता के गर्भ से बाहर आते हैं। ० यह चतुर्थ हेतु है। [५] ० जब तथागत अनुपम बुद्ध ज्ञान (=सम्यक् संबोधि) का साक्षात्कार करते हैं। ० यह पंचम हेतु है। [६] ० जब तथागत अनुपम धर्मचक्र (=धर्मोपदेश को प्रथम प्रवर्तित करते हैं। ० यह षष्ठ हेतु है। [७] और आनन्द! जब तथागत होश-चेत के साथ जीवन-शक्ति को छोड़ते हैं। आनन्द! यह महाभूचाल के प्रादुर्भाव का सप्तम हेतु=सप्तम प्रत्यय है।

[८] पुन च परं आनन्द, यदा तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बान-धातुया परिनिब्बायति, तदायं पथवी कम्पति संकम्पति संपकम्पति संपवेधति । अयं अट्ठमो हेतु, अट्ठमो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातु-भावाय ॥

इमे खो आनन्द, अट्ठ हेतू, अट्ठ पच्चया, महतो भूमिचालस्स पातुभावाया ति" ॥

(९१) "अट्ठ खो इमा आनन्द, परिसा कतमा अट्ठ ? [१] खत्तियपरिसा । [२] ब्राह्मणपरिसा । [३] गहपतिपरिसा । [४] समण-परिसा । [५] चातुम्महाराजिकपरिसा । [६] तावतिंसपरिसा । [७] मारपरिसा । [८] ब्रह्मपरिसा ॥

(९२) अभिजानामि खो पनाहं आनन्द, अनेक सतं खत्तियपरिसं उपसङ्कमिता, तत्र पि मया सन्निसिन्नपुब्बञ्चेव सल्लपितपुब्बञ्च साकच्छा च समापज्जितपुब्बा । तत्थ यादिसको तेसं वण्णो होति, तादिसको मय्हं वण्णो होति । यादिसको तेसं सरो होति, तादिसको मय्हं सरो होति ।

[८] और फिर आनन्द ! जब तथागत संपूर्ण निर्वाण को प्राप्त होते हैं । ० यह अष्टम हेतु है । आनन्द ! महा-भूचाल के यह आठ हेतु= प्रत्यय हैं ।

(९१) "आनन्द ! यह आठ (प्रकार की) परिषद् (=सभा) होती हैं : कौन सी आठ ? [१] क्षत्रिय-परिषद्, [२] ब्राह्मण-परिषद्, [३] गृह पति-परिषद्, [४] श्रमण-परिशद्, [५] चातुर्महाराजिक-परिषद्, [६] त्रायस्त्रिंश-परिषद्, [७] मार-परिषद्, और [८] ब्रह्म-परिटद् ।

(९२) आनन्द! मुझे अपना सैकड़ों क्षत्रिय-परिषदों में जाना याद है । वहाँ भी (मेरा) पहले भाषण किये जैसा पहिले आये जैसा साक्षात्कार

धम्मिया कथाय सन्दस्सेमि समादपेमि समुत्तेजेमि संपहंसेमि। भासमानञ्च मं न जानन्ति 'को नु खो अयं भासति देवो वा मनुस्सो वा ति।' धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा संपहंसेत्वा अन्तरधायामि। अन्तरहितञ्च मं न जानन्ति, 'को नु खो अयं अन्तरहितो देवो वा मनुस्सो वा ति'॥

(९३) अभिजानामि खो पनाहं आनन्द, अनेकसतं ब्राह्मणपरिसं०, गहपतिपरिसं, समणपरिसं, चातुम्महाराजिकपरिसं, तावतिंसपरिसं, मारपरिसं, ब्रह्मपरिसं उपसङ्कमिता। तत्र पि मया सन्निसिन्नपुब्बञ्चेव सल्लपितपुब्बञ्च साकच्छा च समापज्जितपुब्बा। तत्थ यादिसको तेसं वण्णो होति, तादिसको मय्हं वण्णो होति। यादिसको तेसं सरो होति, तादिसको मय्हं सरो होति। धम्मिया कथाय संदस्सेमि समादपेमि समुत्तेजेमि संपहंसेमि। भासमानञ्च मं न जानन्ति, 'को नु खो अयं भासति देवो वा मनुस्सो वा ति?' धम्मिया कथाय संदस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा संपहंसेत्वा अन्तरधायामि। अन्तरहितञ्च मं न जानन्ति, 'को नु खो अयं अन्तरहितो देवो वा मनुस्सो वा, ति'। इमा खो आनन्द! अट्ठ परिसा"॥

(होता है)। आनन्द! ऐसी बात देखने का कारण नहीं मिला, जिससे कि मुझे वहाँ भय वा घबरासट हो। क्षेम को प्राप्त हो, अभय को प्राप्त हो, वैशारद्य को प्राप्त हो, मैं विहार करता हूं।

(९३) आनन्द; मुझे अपना सैकड़ों ब्राह्मण-परिषदों में जाना याद है ०। ० गृहपति-परिषदों में ०। ० श्रमण-परिषदों में ०। ० चातुर्महाराजिक-परिषदों में ०। ० त्रायस्त्रिंश-परिषदों में ०। ० मार-परिषदों में ०। ० ब्रह्म परिषदों में ०।

(९४) अट्ठ खो इमानि आनन्द, अभिभायतनानि । कतमानि अट्ठ ?

[१] अज्झत्तं रूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति परित्तानि सुवण्णदुब्बण्णानि। तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी ति एवंसञ्ञी होति। इदं पठमं अभिभायतनं ॥

[२] अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्पमाणानि सुवण्णदुब्बण्णानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति एवंसञ्ञी होति। इदं दुतियं अभिभायतनं।

[३] अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति परित्तानि सुवण्णदुब्बण्णानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति एवंसञ्ञी होति। इदं ततियं अभिभायतनं।

[४] अज्झत्तं आरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्पमाणानि सुवण्णदुब्बण्णानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति एवंसञ्ञी होति। इदं चतुत्थं अभिभायतनं।

(९४) 'आनन्द ! यह आठ अभिभू-आयतन (=एक प्रकार की योग-क्रिया) हैं कौन से आठ ? [१] अपने भीतर अकेला रूप का ख्याल रखने वाला होता है, और बाहर स्वल्प सुवर्ण या दुवर्ण रूपों को देखता है। 'उन्हें दबाकर (=अभिभूय) जानूँ देखूँ'—ऐसा ख्याल रखने वाला होता है। यह प्रथम अभभूय-आयतन है। [२] अपने भीतर अकेला अ-रूप का ख्याल रखने वाला है, और बारर अपरिमित सुवर्ण या दुवर्ण रूपों को देखता है। 'उन्हें दबाकर जानुँ देखूँ' ऐसा ख्याल रखने वाला होता है। यह द्वितीय०। [३] अपने भीतर अकेला अ-रूप का ख्याल रखने वाला बाहर स्वल्प सुवर्ण या दुवर्ण रूपों को देखता है ०। [४] अपने भीतर अ-रूप का ख्याल ० बाहर सुवर्ण दुवर्ण अपरिमित रूपों को देखता

[५] अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति नीलानि नीलवण्णानि नीलनिदस्सनानि नीलनिभासानि—सेय्यथापि नाम उम्मा-पुप्फं नीलं नीलवण्णं नीलनिदस्सनं नीलनिभासं—सेय्यथा वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं नीलं नीलवण्णं नीलनिदस्सनं नील-निभासं। एवमेव अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति नीलानि नीलवण्णानि नीलनिदस्सनानि नीलनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामीति' एवंसञ्ञी होति। इदं पञ्चमं अभिभायतनं।

[६] अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति पीतानि पीतवण्णानि पीतनिदस्सनानि पीतनिभासानि। सेय्यथा पि नाम कणिकारपुप्फं पीतं पीतवण्ण पीतनिदस्सनं पीतनिभासं। सेय्यथा वा पन, तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं पीतं पीतवण्णं पीतनिदस्सनं पीतनिभासं। एवमेव अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति पीतानि पीतवण्णानि पीतनिदस्सनानि पीतनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति एवंसञ्ञी होति। इदं छट्ठं अभिभायतनं।

[७] अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति लोहित-कानि लोहितकवण्णानि लोहितकनिदस्सनानि लोहितकनिभासानि। सेय्यथा

है ०। [५]अपने भीतर अरूप का ख्याल० बाहर नीले, नीले जैसे नीलवर्ण, नीलनिदर्शन, नीलनिभास रूपों को देखता है। जैसे कि अलसी, का फूल नील = नीलवर्ण = नीलनीदर्शन = नीलनिभास होता है; (वैसा) रूपों को देखता है। जैसे दोनों ओर से चिकना नील० बनारसी वस्त्र हो, ऐसे ही अपने भीतर अ-रूप ०। [६] अपने भीतर अरूप ० बाहर पीत (=पीले) ० देखता है। जैसे कि कणिकार का फूल पीत०; जैसे कि दोनों ओर से चिकना पीत ० काशी का वस्त्र ० [७] अपने भीतर अरूप ०, बाहर लोहित (=लाल) ० देखता है।

पि नाम बन्धुजीवकपुप्फं लोहितकं लोहितकवण्णं लोहितकनिदस्सनं लोहितकनिभासं। सेय्यथा पि वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभाग-विमट्ठं लोहितकं लोहितकवण्णं लोहितकनिदस्सनं लोहितकनिभासं। एवमेव अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति लोहितकानि लोहितकवण्णानि लोहितकनिदस्सनानि लोहितकनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति, एवंसञ्ञी होति। इदं सत्तमं अभि-भायतनं।

[८] अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति ओदातानि ओदातवण्णानि ओदातनिदस्सनानि ओदातनिभासानि। सेय्यथा पि नाम ओसधितारका ओदाता ओदातवण्णा ओदातनिदस्सना ओदातनिभासा। सेय्यथा वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं ओदातं ओदात-वण्णं ओदातनिदस्सनं ओदातनिभासं। एवमेव अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति ओदातानि ओदातवण्णानि ओदातनिदस्सनानि ओदातनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी' ति, एवंसञ्ञी होति। इदं अट्ठमं अभिभायतनं। इमानि खो आनन्द! अट्ठ अभि-भायतनानि।

(९५) अट्ठ खो इमे आनन्द, विमोक्खा। कतमे अट्ठ ?

[१] रूपी रूपानि पस्सति; अयं पठमो विमोक्खो।

जैसेकि बधुजीवक (=अँड़हुल) का फूल लोहित ०; जैसे कि लाल ० काशी का वस्त्र ०। [८] अपने भीतर अरूप ०, बाहर सफेद ० देखता है। जैसे कि शुक्रतारा सफेद ०; जैसे कि ० सफेद ० काशी का वस्त्र ०। आनन्द! यह आठ अभिभू-आयतन हैं।

(९५) "और फिर आनन्द! यह आठ विमोक्ष हैं। कौन से आठ ? [१] रूपी (=रूपवाला) रूपों को देखता है, यह प्रथम विमोक्ष

[२] अज्झत्तं अरूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि पस्सति; अयं दुतियो विमोक्खो।

[३] सुभन्तेव अधिमुत्तो होति; अयं ततियो विमोक्खो।

[४] सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कम्मा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति; अयं चतुत्थो विमोक्खो।

[५] सब्बसो आकासानञ्चयतनं समतिक्कम्म अनन्तं विञ्ञाणन्ति, विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति; अयं पञ्चमो विमोक्खो।

[६] सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्ची' ति, आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति; अयं छट्ठो विमोक्खो।

[७] सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति; अयं सत्तमो विमोक्खो।

है। [२] शरीर के भीतर अरूप का ख्याल रखने वाला हो बाहर रूपों को देखता है ०। [३] सुभ (=शुभ्र) ही अधिमुक्त (=मुक्त) होते हैं ०। [४] सर्वथा रूप के ख्याल को अतिक्रमण कर, प्रतिहिंसा के ख्याल के लुप्त होने से, नानापन के ख्याल को मन में न करने से 'आकाश अनन्त है'--इस आकाश-आनन्त्य-आयतन को प्राप्त हो विहरता है ०। [५] सर्वथा आकाश-आनन्त्य-आयतन को अतिक्रमण कर 'विज्ञान (=चेतना) अनन्त है,'--इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतन को प्राप्त विहरता है ०। [६] सर्वथा विज्ञान-आनन्त्य को अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है'—इस आकिंचन्य-आयतन को प्राप्त हो विहरता है ०। [७] सर्वथा आकिंचन्य-आपयन को अतिक्रमण कर, नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन (=जिस समाधि के आभास को न चेतना ही कहा जा सके, न अचेतान ही) को प्राप्त

[८] सब्बसो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञा-वेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति; अय अट्ठमो विमोक्खो। इमे खो आनन्द, अट्ठ विमोक्खा।

(९६) एकमिदाहं आनन्द, समयं उरुवेलायं विहरामि नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजपालनिग्रोधे पठमाभिसम्बुद्धो। अथ खो आनन्द, मारो पापिमा येनाहं, तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो आनन्द, मारो पापिमा मं एतदवोच—"परिनिब्बातु दानि भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो; परिनिब्बानकालो दानि भन्ते, भगवतो ति।'

(९७) एवं वुत्ते अहं आनन्द! मारं पापिमन्तं एतदवोच,—"न तावाहं पापिम, परिनिब्बायिस्सामि, याव मे भिक्खू न सावका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मपटिपन्ना

हो विहरता है ०। [८] सर्वथा नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयवन को अतिक्रमण कर प्रज्ञावेदित निरोध (=प्रज्ञा की वेदना का जहाँ निरोध हो) को प्राप्त हो, विहरता है, यह आठवाँ विमोक्ष है।

(९६) "एक बार आनन्द! मै प्रथम प्रथम बुद्धत्व को प्राप्त हो उरुवेला में नेरंजरा नदी के तीर अजपाल बर्गद के नीचे विहार करता था। तब आनन्द! दुष्ट (=पापी) मार जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर एक ओर खड़ा हो गया। और बोला—'भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाण को प्राप्त हों, सुगत! परिनिर्वाण को प्राप्त हों।'

(९७) ऐसा कहने पर आनन्द! मैंने दुष्ट मार से कहा—'पापी! मैं तब तक परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरे भिक्षु श्रावक निपुण (=व्यक्त), विनय-युक्त, विशारद, बहुश्रुत, धर्मधर (=उपदेशों

सामिचिपटिपन्ना अनुधम्मचारिनो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञापेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ति ।

(९८) न तावाहं पापिम, परिनिब्बायिस्सामि, याव मे भिक्खुनियो न साविका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मपटिपन्ना सामिचिपटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञापेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ति ।

(९९) न तावाहं पापिम, परिनिब्बायिस्सामि, याव मे उपासका न सावका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मपटिपन्ना सामिचिपटिपन्ना, अनुधम्मचारिनो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञापेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति

को कंठस्थ रखने वाले), धर्म के मार्ग पर आरूढ़, ठीक मार्ग पर आरूढ़, धर्मानुसार आचरण करने वाले, अपने सिद्धान्त (=आचार्यक) को ठीक से पढ़कर न व्याख्यान करने लगेंगे, न उपदेश करेंगे, न प्रज्ञापन करेंगे, न स्थापन करेंगे, न विवरण करेंगे, न विभाजन करेंगे, न स्पष्ट करेंगे; दूसरों द्वारा उठाये अपवाद को धर्म के साथ अच्छी तरह पकड़कर युक्ति (=प्रतिहार्य) के साथ धर्म का उपदेश न करेंगे ।

(९८) जब तक कि मेरी भिक्षुणी श्राविकायें (=शिष्या) निपूण ० : ०

(९९) उपासक श्रावक ० । ०

विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति उप्पन्नं परप्पादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ति।

(१००) न तावाहं पापिम, परिनिब्बायिस्सामि, याव मे उपासिका न साविका भविस्सन्ति वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मपटिपन्ना सामिचिपटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो, सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्ञापेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति विविरस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानीकरिस्सन्ति उप्पन्नं परप्पवादं सहधम्मेन सुनिग्गहितं निग्गहेत्वा सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ति।

(१०१) न तावाहं पापिम, परिनिब्बायिस्सामि, याव मे इदं ब्रह्मचरियं न इद्धञ्चेव भविस्सति फ़ीतञ्च वित्थारितं बाहुजञ्ञं पुथुभूतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितन्ति।

(१०२) इदानेव खो आनन्द, अज्ज चापाले चेतिये मारो पापिमा येनाहं, तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो आनन्द, मारो पापिमा मं एतदवोच,—"परिनिब्बातु भन्ते, भगवा परिनिब्बातु सुगतो। परिनिब्बानकालो दानि भन्ते, भगवतो। भासिता खो पनेसा भन्ते, भगवता वाचा—"न तावाहं पापिम, परिनिब्बायिस्सामि, याव मे भिक्खू न साविका भविस्सन्ति ०; याव मे भिक्खुनियो न साविका भविस्सन्ति०; याव मे उपासका न सावका भविस्सन्ति०; याव मे उपासिका न साविका भविस्सन्ति०; याव मे इदं ब्रह्मचरियं

(१००) उपासिका श्राविकायें ०।

(१०१) जब तक यह ब्रह्मचर्य (=बुद्धधर्म) समृद्ध=वृद्धिगत, विस्तार को प्राप्त, बहुजन-सम्मानित, विशाल और देव-मनुष्यों तक सुप्रकाशित न हो जायगा।

(१०२) आनन्द! अभी आज इस चापाल-चैत्य में मार पापी मेरे

इद्धञ्चेव न भविस्सति फीतञ्च वित्थारितं बाहुजञ्ञं पुथुभूतं याव देव-मनुस्से हि सुप्पकासितन्ति।" एतरहि खो भन्ते, भगवतो ब्रह्मचरियं इद्धञ्चेव फीतञ्च वित्थारितं बाहुजञ्ञं पुथुभूतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं। परिनिब्बातु दानि भन्ते, भगवा; परिनिब्बातु सुगतो; परिनिब्बानकालो दानि भन्ते, भगवतो ति।

(१०३) एवं वुत्ते अहं आनन्द, मारं पापिमन्तं एतदवोचं,—"अप्पोस्सुक्को त्वं पापिम, होहि। न चिरं तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। इतो तिण्णं मासानं अच्चयेन तथागतो परिनिब्बायिस्सती ति।" इदानि खो आनन्द, अज्ज चापालेचेतिये तथागतेन सतेन सम्पजानेन आयुसङ्खारो ओस्सट्ठो ति।

(१०४) एवं वुत्ते आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच,—"तिट्ठतु भन्ते, भगवा कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानन्ति।

पास आया। आकर एक ओर खड़ा...हो बोला—'भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाण को प्राप्त हों ०।

(१०३) ऐसा कहने पर मैंने आनन्द! पापी मार से यह कहा—'पापी! बेफिक्र हो आज से तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे।' अभी आनन्द! इस चापाल-चैत्य में तथागत ने होश-चेत के साथ जीवन-शक्ति को छोड़ दिया।"

(१०४) ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते! भगवान् बहुजन-हितार्थ, बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ, देव-मनुष्यों के अर्थ-हित-सुख के लिये कल्प भर ठहरें।"

(१०५) "अलं दानि आनन्द, मा तथागतं याचि। अकालो दानि आनन्द, तथागतं याचनाया, ति"।

(१०६) दुतियम्पि खो आयस्मा आनन्दो०। ततियम्पि खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—'तिट्ठतु भन्ते, भगवा कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानन्ति।"

(१०७) "सद्दहसि त्वं आनन्द, तथागतस्य बोधिंति" ?

(१०८) 'एवं भन्ते।'

(१०९) "अथ किं चरहि त्वं आनन्द, तथागतं यावततियकं अभिनिप्पीलेसी ति ?"

(११०) "संमुखा मे तं भन्ते, भगवतो सुतं संमुखा पटिग्गहितं—"यस्स कस्सचि आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता

(१०५) "बस आनन्द ! मत तथागत से प्रार्थना करो ! आनन्द ! तथागत से प्रार्थना करने का समय नहीं रहा।"

(१०६) दूसरी बार भी आयुष्मान् आनन्द ने ०। तीसरी बार भी ०।

(१०७) "आनन्द ! तथागत की बोधि (=परमज्ञान) पर विश्वास करते हो ?"

(१०८) "हाँ, भन्ते !"

(१०९) "तो आनन्द ! क्यों तीन बार तक तथागत को दबाते हो ?"

(११०) "भन्ते ! मैंने यह भगवान् के मुख से सुना, भगवान् के

यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा। सो आकङ्खमानो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा। तथागतस्स खो आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा। सो आकङ्खमानो आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसंवा ति"।

(१११) 'सद्दहसि त्वं आनन्दा' ति ?

(११२) 'एवं भन्ते।'

(११३) तस्मातिहानन्द, तुय्हेवेतं दुक्कटं, तुय्हेवेतं अपरद्धं, यं त्वं तथागतेन एवं ओळारिके निमित्ते कयिरमाने, ओळारिके ओभासे कयिरमाने, नासक्खि पटिविज्झितुं। न तथागतं याचि—'तिट्ठतु भन्ते, भगवा कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानन्ति।' सचे त्वं आनन्द, तथागतं याचेय्यासि, द्वेव ते वाचा तथागतो पटिक्खिपेय्य। अथ ततियकं अधिवासेय्य। तस्मातिहानन्द, तुय्हेवेतं दुक्कटं, तुय्हेवेतं अपरद्धं।

मुख से ग्रहण किया—'आनन्द ! जिसने चार ऋद्धिपाद साधे हैं ०।"

(१११) "विश्वास करते हो आनन्द !"

(११२) "हाँ, भन्ते !"

(११३) "तो आनन्द ! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है; जो कि तथागत के वैसा उदार(=स्थूल) भाव प्रकट करने पर, उदार भाव दिखलाने पर भी तुल नहीं समझ सके। तुमने तथागत से नहीं याचना की—'भन्ते ! भगवान् ० कल्प भर ठहरें'। यदि आनन्द ! तुमने याचना की होती, तो तथागत दो ही बार तुम्हारी बात को अस्वीकृत करते, तीसरी बार स्वीकार कर लेते। इसलिये, आनन्द ! यह तुम्हारा ही दुष्कृत (=दुक्कट) है, तुम्हारा ही अपराध है।

(११४) एकमिदाहं आनन्द, समयं राजगहे विहरामि गिज्झकूटे पब्बते। तत्रापि खो ताहं आनन्द, आमन्तेसि—'रमणीयं आनन्द, राजगहं, रमणीयो आनन्द, गिज्झकूटो पब्बतो, यस्स कस्सचि आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा। तथागतस्सय खो आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा ति'। एवं पि खो त्वं आनन्द, तथागतेन ओळारिके निमित्ते कयिरमाने, ओळारिके ओभासे कयिरमाने नासक्खि पटिविज्झितुं, न तथागतं याचि,—तिट्ठतु भन्ते, भगवा कप्पं; तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानन्ति'। सचे त्वं आनन्द, तथागतं याचेय्यासि, द्वेव ते वाचा तथागतो पटिक्खिपेय्य, अथ ततियकं अधिवासेय्य; तस्मातिहानन्द, तुय्हेवेतं दुक्कटं, तुय्हेवेतं अपरद्धं।

(११५) एकमिदाहं आनन्द, समयं तत्थेव राजगहे विहरामि गोतमनिग्रोधे ०। तत्थेव राजगहे विहरामि चोरपपाते ०। तत्थेव राजगहे विहरामि वेभार-पस्से सत्तपण्णिगुहायं ०। तत्थेव राजगहे विहरामि

(११४) "आनंद! एक बार मैं राजगृह के गृध्रकुट-पर्वत पर विहार करता था। वहाँ भी आनंद! मैंने तुमसे कहा—आनंद! राजगृह रमणीय है। गृध्रकूट-पर्वत रमणीय है। आनंद! जिसने चार ऋद्धिपाद साधे है ०। तथागत के वैसा उदार भाव प्रकट करने पर ० भी तुम नहीं समझ सके ०। आनंद! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है।

(११५) "आनंद! एक बार मैं वही राजगृह के गौतम-न्यग्रोध में विहार करता था०। ० राजगृह के चोरप्रपात पर०। ० राजगृह में वैभार-

इसिगिलिपस्से कालसिलायं ०। तत्थेव राजगहे विहरामि सीतवने सप्प-सोण्डिकपब्भारे०। तत्थेव राजगहे विहरामि तपोदारामे ०। तत्थेव राजगहे विहरामि वेलुवने कलन्दकनिवापे ०। तत्थेव राजगहे विहरामि जीव-कम्बवने ०। तत्थेव राजगहे विहरामि मद्दकुच्छिस्मिं मिगदाये ॥ तत्रापि खो ताहं आनन्द, आमन्तेसिं—"रमणीयं आनन्द, राजगहं, रमणीयो गिज्झकूटो पब्बतो, रमणीयो गोतम—निग्रोधो, रमणीयो चोरपपातो, रमणीया वेभारपस्से सत्तपण्णिगुहा, रमणीया इसिगिलिपस्से कालसिला, रमणीयो सीतवने सप्पसोण्डिकपब्भारो, रमणीयो तपोदारामो, रमणीयो वेलुवने कलन्दकनिवापो, रमणीयं जीवकम्बवनं, रमणीयो मद्दकुच्छिस्मिं मिगदायो; यस्स कस्सचि आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा ०, सो आकङ्खमानो आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा, ति' ॥

"एवं पि खो त्वं आनन्द, तथागतेन ओळारिके निमित्ते कयिरमाने ओळारिके ओभासे कयिरमाने नासक्खि पटिविज्झितुं।" न तथागतं याचि—'तिट्ठतु भगवा कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजन-सुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानन्ति'। सचे त्वं आनन्द, तथागतं याचेय्यासि, द्वेव ते वाचा तथागतो पटिक्खिपेय्य, अथ ततियकं अधिवासेय्य। तस्मातिहानन्द, तुय्हेवेतं दुक्कटं, तुय्हेवेतं अपरद्धं।

पर्वत की बगल में की सप्तपर्णी (=सत्तपण्णी) गुहा में ०।० ऋषिगिरि की बगल में कालशिला पर ०।० सीतवन के सर्पशौंडिक (=सप्पसोंडिक) पहाळ (=पब्भार) पर ०।० तपोदाराम में ०।० वेणुवन में कलन्दक-निवाप में ०।० जीवकाम्रवन में ०।० मद्रकुक्षिमृगदाव में विहार करता था। वहाँ भी आनंद! मैंने तुमसे कहा—आनन्द! रमणीय है राजगृह। रमणीय है गौतमन्यग्रोध ०।० तुम्हारा ही अपराध है।

(११६) एकमिदाहं आनन्द, समयं इधेव वेसालियं विहरामि उदेने चेतिये। तत्रापि खो ताहं आनन्द, आमन्तेसिं—'रमणीया आनन्द, वेसाली, रमणीयं उदेनचेतियं यस्स कस्सचि आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकङ्खमानो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा। तथागतस्स खो आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा; सो आकङ्खमानो आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा ति'। एवं पि खो त्वं आनन्द, तथागतेन ओळारिके निमित्ते कयिरमाने ओळारिके ओभासे कयिरमाने नासक्खि पटिविज्झितुं। न तथागतं याचि—'तिट्ठतु भगवा, कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानन्ति'। सचे त्वं आनन्द, तथागतं याचेय्यासि, द्वेव ते वाचा तथागतो पटिक्खिपेय्य, अथ ततियकं अधिवासेय्य। तस्मातिहानन्द, तुय्हेवेतं दुक्कटं, तुय्हेवेतं अपरद्धं।

एकमिदाहं आनन्द, समयं इधेव वेसालियं विहरामि गोतमके चेतिये०। इधेव वेसालियं विहरामि सत्तम्बे चेतिये०। इधेव वेसालियं विहरामि बहुपुत्ते चेतिये ०। इधेव वेसालियं विहरामि सारन्ददे* चेतिये०। इदानेव खो ताहं आनन्द, अज्ज चापाले चेतिये आमन्तेसिं— 'रमणीया आनन्द, वेसाली, रमणीयं उदेनं चेतियं, रमणीयं गोतमकं चेतियं, रमणीयं सत्तम्बं चेतियं, रमणीयं बहुपुत्तं चेतियं, रमणीयं सारन्ददं चेतियं, रमणीयं चापालं चेतियं। यस्स कस्सचि आनन्द,

(११६) "आनन्द! एक बार मैं इसी वैशाली के उदयनचैत्य में विहार करता था ०।० गौतमक-चैत्य ०।० सप्ताम्र (=सत्तम्ब)

---

*किसी २ में 'सारन्ददे' पाठ है।

चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा ; सो आकङ्खमानो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा; तथागतस्स खो आनन्द, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा ; सो आकङ्खमानो आनन्द, तथागतो कप्पं वा तिट्ठेय्य कप्पावसेसं वा ति'।

एवं पि खो त्वं आनन्द, तथागतेन ओळारिके निमित्ते कयिरमाने, ओळारिके ओभासे कयिरमाने नासक्खि पटिविज्झितुं। न तथागतं याचि—'तिट्ठतु भगवा कप्पं, तिट्ठतु सुगतो कप्पं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानन्ति। सचे त्वं आनन्द, तथागतं याचेय्यासि। द्वेव ते वाचा तथागतो पटिक्खिपेय्य। अथ ततियकं अधिवासेय्य। तस्मातिहानन्द, तुय्हेवेतं दुक्कटं, तुय्हेवेतं अपरद्धं।

(११७) "ननु एतं आनन्द, मया पटिगच्चेव अक्खातं सब्बेहेव पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो अञ्ञथाभावो। तं कुतेत्थ आनन्द, लब्भा यन्तं जातं भूतं सङ्खतं पलोकधम्मं तं वत मा पलुज्जी ति। नेतं ठानं विज्जति। यं खो पनेतं आनन्द, तथागतेन चत्तं वन्तं मुत्तं पहीनं पटिनिस्सट्ठं, ओस्सट्ठो आयुसङ्खारो। एकंसेन वाचा तथागतेन भासिता—

चैत्य ०।० बहुपुत्रक-चैत्य ०।० सारन्दद-चैत्य ०।० अभी आज मैंने आनन्द ! तुम्हें इस चापाल-चैत्य में कहा—आनन्द ! रमणीय है वैशाली ०। तुम्हारा ही अपराध है।

(११७) "आनन्द ! क्या मैंने पहिले ही नहीं कह दिया—सभी प्रियों=मनापों से जुदाई वियोग=अन्यथाभाव होता है। सो वह आनन्द ! कहाँ मिल सकता हैं, कि जो उत्पन्न=भूत=संस्कृत, नाशमान है, वह न नष्ट हो। यह संभव नहीं। आनन्द ! जो यह तथागत ने जीवन-संस्कार छोड़ा, त्यागा, प्रहीण=प्रतिनिःसृष्ट किया, तथागत ने बिल्कुल पक्की बात

'न चिरं तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। इतो तिण्णं मासानं अच्चयेन तथागतो परिनिब्बायिस्सती' ति। तञ्च तथागतो जीवितहेतु पुन पच्चागमिस्सती ति नेतं ठानं विज्जति।

(११८) आयामानन्द, येन महावनं कूटागारसाला, तेनुपसङ्कमिस्सामा" ति।

'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि।

(११९) अथ खो भगवा आयस्मता आनन्देन सद्धिं येन महावनं कूटागारसाला, तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'गच्छ त्वं आनन्द, यावतिका भिक्खू वेसालिं उपनिस्साय विहरन्ति, ते सब्बे उपट्ठानसालायं सन्निपातेही ति'॥ 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा यावतिका भिक्खू वेसालिं उपनिस्साय विहरन्ति, ते सब्बे उपट्ठानसालायं सन्निपातेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"सन्निपतितो भन्ते, भिक्खुसंघो, यस्स दानि भन्ते, भगवा कालं मञ्ञसी ति।"

कही है—जल्दी ही ० आज से तीन मास बाद तथागत का परिनिर्वाण होगा। जीवन के लिए तथागत क्या फिर वमन किये को निगलेंगे! यह संभव नहीं।

(११८) "आओ आनन्द! जहाँ महावन-कूटागारशाला है, वहाँ चलें।" "अच्छा भन्ते।" ०।

(११९) भगवान् आयुष्मान् आनन्द के साथ जहाँ महावन कूटागारशाला थी, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनन्द से बोले—"आनन्द! जाओ वैशाली के पास जितने भिक्षु विहार करते हैं, उनको उपस्थानशाला में एकत्रित करो।" ०।

(१२०) अथ खो भगवा येनुपट्ठानसाला, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"तस्मातिह भिक्खवे, ये ते मया धम्मा अभिञ्ञा देसिता। ते वो साधुकं उग्गहेत्वा आसेवितब्बा भावेतब्बा बहुलीकातब्बा, यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्ठितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं । कतमे च ते भिक्खवे, धम्मा मया अभिञ्ञा देसिता ये वो साधुकं उग्गहेत्वा आसेवितब्बा भावेतब्बा बहुलीकातब्बा, यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्ठितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ? सेय्यथीदं—[१] चत्तारो सतिपट्ठाना, [२] चत्तारो सम्मप्पधाना, [३] चत्तारो इद्धिपादा, [४] पञ्चिन्द्रियानि, [५] पञ्च बलानि, [६] सत्त बोज्झङ्गा, [७] अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो। इमे खो भिक्खवे, धम्मा मया अभिञ्ञा देसिता, ये वो साधुकं उग्गहेत्वा आसेवितब्बा भावेतब्बा बहुलीकातब्बा, यथयिदं ब्रह्मचरियं अद्धनियं अस्स चिरट्ठितिकं, तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानन्ति" ॥

(१२०) तब भगवान् जहाँ उपस्थानशाला थी वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। बैठकर भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

"इसलिए भिक्षुओं ! मैंने जो धर्म उपदेश किया है, तुम अच्छी तौर से सीखकर उसका सेवन करना, भावना करना, बढ़ाना; जिसमें कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनीय = चिरस्थायी हो; यह (ब्रह्मचर्य) बहुजन-हितार्थ, बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ; देव-मनुष्यों के अर्थ-हित-सुख के लिए हो। भिक्षुओं ! मैंने यह कौन से धर्म, अभिज्ञानकर, उपदेश किये हैं, जिन्हें अच्छी तरह सीखकर ० ? जैसे कि [१] चार स्मृति-प्रस्थान, [२] चार सम्यक-प्रधान, [३] चार ऋद्धिपाद, [४] पांच इन्द्रिय, [५] पाँच बल [६] सात बोध्यंग, [७] आर्य अष्टांगिक-मार्ग ।··· ।

(१२१) अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि,—"हन्द दानि भिक्खवे, आमन्तयामि वो वयधम्मा सङ्खारा; अप्पमादेन सम्पादेथ। न चिरं तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। इतो तिण्णं मासानं अच्चयेन तथागतो परिनिब्बायिस्सती ति॥"

(१२२) इदमवोच भगवा; इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"परिपक्को वयो मय्हं, परित्तं मम जीवितं।
पहाय वो गमिस्सामि, कतं मे सरणमत्तनो॥
अप्पमत्ता सतीमन्तो, सुसीला होथ भिक्खवो।
सुसमाहितसङ्कप्पा सचित्तमनुरक्खथ॥

(१२१) "हन्त ! भिक्षुओं ! तुम्हें कहता हूँ–संस्कार (=कृतवस्तु), नाश होने वाले (=वयधर्म्मा) हैं, प्रमादरहित हो (आदर्श को) सम्पादन करो। अचिरकाल में ही तथागत का परिनिर्वाण होगा। आज से तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाण पायेंगे।"

(१२२) भगवान् ने यह कहा। सुगत शास्ता ने यह कह कर फिर यह भी कहा—

"मेरी आयु परिपक्व हो गयी, मेरा जीवन थोड़ा है।

"तुम्हें छोड़ कर जाऊँगा, मैंने अपने करने लायक (काम) को कर लिया॥

भिक्षुओं ! निरालस, सावधान, सुशील हो जाओ।

संकल्प का अच्छी तरह समाधान कर अपने चित्त की रक्षा करो॥

यो इमस्मिं धम्मविनये अप्पमत्तो विहेस्सति ।
पहाय जातिसंसारं, दुक्खस्सन्तं करिस्सती" ति ॥

भाणवारं ततियं ॥३॥

(१२३) अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवर-मादाय वेसालिं पिण्डाय पाविसि। वेसालियं पिण्डाय चरित्वा पच्छा-भत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो नागापलोकितं वेसालिं अपलोकेत्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि,—'इदं पच्छिमकं आनन्द, तथागतस्स वेसालिया दस्सनं भविस्सति। आयामानन्द, येन भण्डगामो, तेनुपसङ्कमिस्सामा' ति। 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ॥

(१२४) अथ खो भगवा महता भिक्खुसंघेन सद्धिं येन भण्डगामो,

जो इस धर्म मे प्रमादरहित हो उद्योग करेगा ;
वह आवागमन को छोड़ दुःख का अन्त करेगा ॥

(इति) तृतीय भाणवार ॥३॥

कुसीनारा की ओर—

(१२३) तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र चीवर ले वैशाली में पिंडचार कर, भोजनोपरान्त नागावलोकन (=हाथी की तरह सारे शरीर को घुमाकर देखना) से वैशाली को देखकर, आयुष्मान् आनन्द से कहा—"आनन्द ! तथागत का यह अन्तिम वैशाली-दर्शन होगा। आओ आनन्द ! जहाँ भंडुगाम है, वहाँ चलें।" "अच्छा भन्ते !"...

भण्डुगाम—

(१२४) तब भगवान् महाभिक्षु-संघ के साथ जहाँ भंडुग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भण्डुग्राम में विहार करते थे।

तदवसरि। तत्र सुदं भगवा भण्डगामे विहरति। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"चतुन्नं भिक्खवे, धम्मानं अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च। कतमेसं चतुन्नं ?

(१२५) [१] अरियस्स भिक्खवे, सीलस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरित ममञ्चेव तुम्हाकञ्च।

[२] अरियस्स भिक्खवे, समाधिस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च।

[३] अरियाय भिक्खवे, पञ्ञाय अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च।

[४] अरियाय भिक्खवे, विमुत्तिया अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च।

(१२६) तयिदं भिक्खवे, अरियं सीलं अनुबुद्धं पटिविद्धं। अरियो समाधि अनुबुद्धो पटिविद्धो। अरिया पञ्ञा अनुबुद्धा पटिविद्धा। अरिया विमुत्ति अनुबुद्धा पटिविद्धा। उच्छिन्ना भवतण्हा, खीणा भवनेत्ति, नत्थि

भिक्षुओं ! चार धर्मों का अवबोध न होने से प्रतिवेध न होने से ही इस प्रकार दीर्घकाल तक मेरा और तुम्हारा पैदा होना तथा मरना चलता रहा। कौन से चार ?

(१२५) [१] भिक्षुओं ! आर्यशील का ज्ञान न होने से, प्रतिवेध न होने से ०। [२] भिक्षुओ ! आर्य समाधिका....। [३] भिक्षुओ ! आर्य प्रज्ञाका...। [४] भिक्षुओ। आर्य विमुक्तिका...।

(१२६) भिक्षुओ ! उस आर्य-शील का ज्ञान हुआ, प्रतिवेध हुआ। उस आर्य-समाधि का०। उस आर्य-प्रज्ञा का०। उस आर्य-विमुक्ति का०। भव

दानि पुनब्भवो" ति । इदमवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

(१२७) "सीलं समाधि पञ्ञा च विमुत्ति च अनुत्तरा।
अनुबुद्धा इमे धम्मा गोतमेन यसस्सिना ॥
इति बुद्धो अभिञ्ञाय धम्ममक्खासि भिक्खुनं।
दुक्खस्सन्तकरो सत्था चक्खुमा परिनिब्बुतो" ति ॥

(१२८) तत्रापि सुदं भगवा भण्डगामे विहरन्तो एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिं कथं करोति—"इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा; सील-परिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो०। पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति। सेय्यथीदं—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा" ति।

(१२९) अथ खो भगवा भण्डगामे यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'आयामानन्द, येन हत्थिगामो, येन अम्बगामो, येन

तृष्णा नष्ट हो गई। भव-नेता जाता रहा। अब पुनर्जन्म नहीं होगा। भगवान् ने यह कहा; और यह कह कर आगे भगवान् ने यह कहा—

(१२७) यशस्वी गौतम ने शील, समाधि, प्रज्ञा तथा सर्वश्रेष्ठ विमुक्ति का प्रतिवेध प्राप्त किया॥

बुद्ध ने इसे जानकर भिक्षुओं को धर्म का उपदेश किया। दुक्ख का अन्त करने वाले शास्ता, चक्षुमान् शान्त हो गये॥

(१२८) वहाँ भंडुग्राम में विहार करते भी भगवान्०।

(१२९) ० जहाँ अम्बगाम (=आम्रग्राम) ०। ० जहाँ जम्बूग्राम

जम्बुगामो, येन भोगनगरं, तेनुपसङ्कमिस्सामा ति'। 'एवं भन्ते', ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। अथ खो भगवा महता भिक्खु-संघेन सद्धिं येन भोगनगरं तदवसरि।

(१३०) तत्र सुदं भगवा भोगनगरे विहरति आनन्दे चेतिये। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—'चत्तारो मे भिक्खवे, महापदेसे देसिस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामी ति। 'एवं भन्ते' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं।

(१३१) भगवा एतदवोच—

[१] इध भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'संमुखा मे तं आवुओ, भगवतो सुतं संमुखा पटिग्गहितं; अयं विनथो, इदं सत्थुसासनन्ति'; तस्स भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं, नप्पटिक्कोसितब्बं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा तानि पदब्यञ्जनानि साधुकं उग्गहेत्वा

(=जम्बूग्राम) ० जहाँ भोगनगर ०।

भोजनगर—

(७) महाप्रदेश (कशौटी)

(१३०) वहाँ भोगनगर में भगवान् सानरन्दद-चैत्य में विहार करते थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—"भिक्षुओं! यह चार महाउपदेश तुम्हें उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो, अच्छी तरह मन में करो, भाषण करता हूं।" "अच्छा भन्ते!" कह उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

(१३१) भगवान् ने यह कहा—[१] "भिक्षुओ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो! मैंने इसे भगवान् के मुख से सुना, मुख से ग्रहण किया है; यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का उपदेश है, तो भिक्षुओ! उस दिन भिक्षु के भाषण का न अभिनन्दन करना, न निन्दा करना।

सुत्ते ओतारेतब्बानि, विनये सन्दस्सेतब्बानि। तानि चे सुत्ते ओतारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि, न चेव सुत्ते ओतरन्ति, न च विनये सन्दिस्सन्ति; निट्ठमेत्थ गन्तब्बं,—"अद्धा इदं न चेव तस्स भगवतो वचनं, इमस्स च भिक्खुनो दुग्गहितन्ति।" इति हेतं भिक्खवे, छड्डेय्याथ। तानि चे सुत्ते ओतारियमानानि, विनये सन्दस्सियमानानि, सुत्ते चेव ओतरन्ति, विनये च सन्दिस्सन्ति; निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—"अद्धा इदं तस्स भगवतो वचनं, इमस्स च भिक्खुनो सुग्गहितन्ति"। इदं भिक्खवे, पठमं महापदेसं धारेय्याथ।

[२] इध पन भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'अमुकस्मिं नाम आवासे संघो विहरति सथेरो सपामोक्खो। तस्स मे संघस्स संमुखा सुतं, संमुखा पटिग्गहितं, अयं धम्मो, अयं विनयो, इदं सत्थुसासनन्ति'। तस्स भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं, नप्पटिक्कोसितब्बं। अनभिनन्दित्वा, अप्पटिक्कोसित्वा, तानि पदब्यंजनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओतारेतब्बानि, विनये सन्दस्सेतब्बानि; तानि चेव सुत्ते ओतारियमानानि, विनये सन्दस्सियमानानि, न चेव सुत्ते ओतरन्ति; न च विनये

अभिनन्दन न कर, निन्दा न कर, उन पद-व्यंजनों को अच्छी तरह सीखकर, सूत्र से तुलना करना, विनय में देखना। यदि वह सूत्र से तुलना करने पर, विनय में देखने पर, न सूत्र में उतरते हैं; न विनय में दिखाई देते हैं; तो विश्वास करना कि अवश्य वह भगवान् का वचन नहीं है, इस भिक्षुका ही दुर्गृहीत है। ऐसा (होने पर) भिक्षुओ! उसको छोड़ देना। यदि वह सूत्र से तुलना करने पर, विनय में देखने पर, सूत्र में भी उतरता है, विनयमें भी दिखाई देता है, तो विश्वास करना—अवश्य यह भगवान का वचन है, इस भिक्षु का यह सुगृहीत है भिक्षुओ! इसे प्रथम महाउपदेश धारण करना।

"[२] और फिर भिक्षुओ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो! अमुक आवास में स्थविर-युक्त प्रमुख-युक्त (भिक्षु) संघ विहार करता है।

सन्दिस्सन्ति ; निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—"अद्धा इदं न चेव तस्स भगवतो वचनं, तस्स च संघस्स दुग्गहितन्ति।" इति हेतं भिक्खवे, छड्डेय्याथ। तानि चे सुत्ते ओतारियमानानि, विनये सन्दस्सियमानानि, सुत्ते चेव ओतरन्ति, विनये च सन्दिस्सन्ति; निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—"अद्धा इदं तस्स भगवतो वचनं, तस्स च संघस्स सुग्गहितन्ति"। इदं भिक्खवे, दुतियं महापदेसं धारेय्याथ।

[३] इध पन भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'अमुकस्मिं नाम आवासे सम्बहुला थेरा भिक्खू विहरन्ति बहुस्सुता आगतागमा धम्मधरा विनयधरा मातिकाधरा। तेसं मे थेरानं संमुखा सुतं, संमुखा पटिग्गहितं—'अयं धम्मो, अयं विनयो, इदं सत्थुसासनन्ति'। तस्स भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं०। न च विनये सन्दिस्सन्ति; निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—"अद्धा इदं न चेव तस्स भगवतो वचनं, तेसञ्च थेरानं दुग्गहितन्ति।" इति हेतं भिक्खवे, छड्डेय्याथ। तानि चे सुत्ते ओतारियमानानि०। विनये चे सन्दिस्सन्ति; निट्ठमेत्थ गन्तब्बं, "अद्धा इदं तस्स भगवतो वचनं, तेसञ्च थेरानं सुग्गहितन्ति।" इदं भिक्खवे, ततियं महापदेसं धारेय्याथ॥

मैंने उस संघ के मुख से सुना, मुख से ग्रहण किया है—यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का शासन है ०। तो विश्वास करना, कि यह अवश्य उन भगवान् का वचन है, इसे संघ ने सुगृहित किया। भिक्षुओ ! यह दूसरा महाउपदेश धारण करना।

"[३] ० भिक्षु ऐसा कहे—'आवुसो ! अमुक आवास में बहुत से बहुश्रुत, आगत-आगम—(=आगमज्ञ), धर्म-धर, विनय-धर, मात्रिकाधर, स्थविर भिक्षु विहार करते हैं। यह मैंने उन स्थविरों के मुख से सुना, मुख से ग्रहण किया। यह धर्म है। ०। ०।

[४] इध पन भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'अमुकस्मिं नाम आवासे एको थेरो भिक्खु विहरति बहुस्सुतो आगतागमो धम्मधरो विनयधरो मातिकाधरो तस्स मे थेरस्स संमुखा सुतं, संमुखा पटिग्गहितं अयं धम्मो, अयं विनयो, इदं सत्थुसासनन्ति ।' तस्स भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं, नप्पटिक्कोसितब्बं । अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा, तानि पदब्यञ्जनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओतारेतब्बानि विनये सन्दस्सेतब्बानि । तानि चे सुत्ते ओतारियमानानि, विनये सन्दस्सियमानानि, न चेव सुत्ते ओतरन्ति, न च विनये सन्दिस्सन्ति ; निट्ठमेत्थ गन्तब्बं, "अद्धा इदं न चेव तस्स भगवतो वचनं, तस्स च थेरस्स दुग्गहितन्ति" इति हेतं भिक्खवे, छड्डेय्याथ । तानि चे सुत्ते ओतारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि, सुत्ते चेव ओतरन्ति विनये च सन्दिस्सन्ति; निट्ठमेत्थ गन्तब्बं, "अद्धा इदं तस्स भगवतो वचनं, तस्स च थेरस्स सुग्गहितन्ति"। इदं भिक्खवे, चतुत्थं महापदेसं धारेय्याथ । इमे खो भिक्खवे, चत्तारो महापदेसे धारेय्याथा ति ।।

(१३२) तत्र पि सुदं भगवा भोगनगरे विहरन्तो आनन्दे चेतिये एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिं कथं करोति—'इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्जा; सील परिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो—समाधि-

"[४] भिक्षुओ ! (यदि) भिक्षु ऐसा कहे—अमुक आवास में एक बहुश्रुत ० स्थविर भिक्षु विहार करता है। यह मैंने उस स्थविर के मुख से ग्रहण किया है। यह धर्म है, यह विनय ०। भिक्षुओ; इसे चतुर्थ महाउपदेश धारण करना।

भिक्षुओ ! इन चार महाउपदेशों को धारण करना ।"

(१३२) वहाँ भोगनगर में विहार करते समय भी भगवान् भिक्षुओ

परिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा ; पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति; सेय्यथीदं—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा ति' ॥

(१३३) अथ खो भगवा भोगनगरे यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'आयामानन्द येन पावा, तेनुपसङ्कमिस्सामा ति' ।

'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि । अथ खो भगवा महता भिक्खुसंघेन सद्धिं येन पावा, तदवसरि । तत्र सुदं भगवा पावायं विहरति चुन्दस्स कम्मारपुत्तस्स अम्बवने ।

(१३४) अस्सोसि खो चुन्दो कम्मारपुत्तो—'भगवा किर पावं अनुप्पत्तो पावायं विहरति मय्हं अम्बवने ति' । अथ खो चुन्दो कम्मारपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नं खो चुन्दं कम्मारपुत्तं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि संपहंसेसि । अथ खो

को बहुत करके यही धर्म कथा कहते थे ० ।

पावा—

चुन्द का अन्तिम भोजन

(१३३) ० तब भगवान् भिक्षु-संघ के साथ जहाँ पावा थी, वहाँ गये । वहां पावा में भगवान् चुन्द कर्मार-(=सोनार)-पुत्र के आम्रवन में विहार करते थे ।

(१३४) चुन्द कर्मार पुत्र ने सुना—भगवान् पावा में आये हैं; पावा में मेरे आम्रवन में विहार करते हैं । तब चुन्द कर्मार-पुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ...जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्र को भगवान् ने धार्मिक-कथा से ० समुत्तेजित ० किया ।

चुन्दो कम्मारपुत्तो भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो संपहंसितो भगवन्तं एतदवोच—'अधिवासेतु मे भन्ते, भगवा स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसंघेना ति' । अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन ।

(१३५) अथ खो चुन्दो कम्मारपुत्तो भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि । अथ खो चुन्दो कम्मारपुत्तो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके निवेसने पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा पहूतञ्च सूकरमद्दवं, भगवतो कालं आरोचापेसि—'कालो भन्ते निट्ठितं भत्तन्ति' ।

(१३६) अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय

तब चुन्द ० ने भगवान् की धार्मिक कथा से ० समुत्तेजित ० हो भगवान् से यह कहा—

"भन्ते ! भिक्षु-संघ के साथ भगवान् मेरा कल का भोजन स्वीकार करें ।"

भगवान् ने स्वीकार किया ।

(१३५) तब चुन्द कर्मार-पुत्र भगवान् की स्वीकृति को जान, आसन से उठ, भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा करके चला गया ।' तब चुन्द कर्मार-पुत्र ने उस रात के बीतने पर उत्तम खाद्य-भोज्य (और) बहुत सा शूकर-मार्दव (=सूकर-मद्दव)* तैयार करवा, भगवान् को काल की सूचना दी—"भगवान् ! भोजन का समय हो गया है ।"

(१३६) तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र चीवर ले भिक्षु-

---

* सुअर का मांस या शूकर कन्द का पाक । (अट्ठकथा)

सद्धिं भिक्खुसंघेन येन चुन्दस्स कम्मारपुत्तस्स निवेसनं, तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा चुन्दं कम्मारपुत्तं आमन्तेसि—'यन्ते चुन्द, सूकरमद्दवं पटियत्तं, तेन मं परिविस; यं पनञ्ञं खादनीयं भोजनीयं पटियत्तं, तेन भिक्खुसंघ परिविसा ति'।

(१३७) 'एवं भन्ते' ति खो चुन्दो कम्मारपुत्तो भगवतो पटिस्सुत्वा यं अहोसि सूकरमद्दवं पटियतं तेन भगवन्तं परिविसि। यं पनञ्ञं खादनीयं भोजनीयं पटियत्तं, तेन भिक्खुसंघं परिविसि।

(१३८) अथ खो भगवा चुन्दं कम्मारपुत्तं आमन्तेसि—'यन्ते चुन्द, सूकरमद्दवं अवसिट्ठं, तं सोब्भे निखणाहि। नाहं तं चुन्द, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय, यस्स तं परिभुत्तं सम्मा परिणामं गच्छेय्य अञ्ञत्र तथागतस्सा ति'।

संघ के साथ जहाँ चुन्द कर्मार-पुत्र का घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। बैठे हुए भगवान् ने चुन्द कर्मार-पुत्र को आमन्त्रित किया,—"चुन्द ! जो शूकर-मार्दव तय्यार किया है, उसे हमें परोस और जो खाद्य भोज्य वस्तुएं तैयार है, भिक्षु-संघ को देना।

(१३७) "अच्छा भन्ते !".....।

(१३८) तब भगवान् ने चुन्द कर्मार-पुत्र को आमन्त्रित किया,—चुन्द ! जो शूकर-मार्दव बच गया है, उसको गड्ढा खोदकर गाड़ दे ! चुन्द ! देव, मार, ब्रह्मा सहित लोक में और श्रमण-ब्राह्मण, और देवता मनुष्य सहित इस प्रजा में तथागत को छोड़ कर और कोई नहीं दिखाई देता, जो इस (भोजन) को पचा सकेगा।

(१३९) 'एवं भन्ते' ति खो चुन्दो कम्मारपुत्तो भगवतो पटिस्सुत्वा यं अहोसि सूकरमद्दवं अवसिट्ठं, तं सोब्भे निखणित्वा येन भगवा, तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो चुन्दं कम्मारपुत्तं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा संपहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

(१४०) अथ खो भगवतो, चुन्दस्स कम्मारपुत्तस्स भत्तं भुत्ताविस्स खरो आबाधो उप्पज्जि। लोहितपक्खन्दिका पबाल्हा वेदना वत्तन्ति मारणन्तिका। ता सुदं भगवा सतो सम्पजानो अधिवासेसि अविहञ्ञमानो।

(१४१) अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'आयामानन्द, येन कुसिनारा, तेनुपसङ्कमिस्सामा ति'। 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि।

(१४२) चुन्दस्स भत्तं भुञ्जित्वा, कम्मारस्साति मे सुतं।
आबाधं संफुसि धीरो, पबाल्हं मारणन्तिकं॥

(१३९) "अच्छा भन्ते !"......। एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्र को भगवान् धार्मिक-कथा से ० समुत्तेजित ० कर आसन से उठ कर चल दिये।

(१४०) तब चुन्द कर्मार-पुत्र के भात (=भोजन) को खाकर भगवान को खून गिरने की, कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई, मरणान्तक सख्त पीड़ा होने लगी। उसे भगवान ने स्मृति-संप्रजन्ययुक्त हो, बिना दुःखित हुए सहन किया। तब भगवान ने आयुष्मान आनन्द को संबोधित किया—

(१४१) ० "आओ आनन्द ! जहाँ कुसीनारा है, वहाँ चलें।"
"अच्छा भन्ते।"

(१४२) मैंने सुना है—चुन्द कर्मार के भात को खा कर,
धीर को मरणान्तक भारी रोग हो गया।

भुत्तस्स च सूकरमद्दवेन, ब्याधि पबाळ्हो उदपादि सत्थुनो।
विरेचमानो भगवा अवोच, गच्छामहं कुसिनारं नगरन्ति ॥

(१४३) अथ खो भगवा मग्गा ओक्कम्म येन अञ्ञातरं रुक्खमूलं, तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'इङ्घ मे त्वं आनन्द, चतुग्गुणं संघाटिं पञ्ञापेहि। किलन्तोऽस्मि आनन्द, निसीदिस्सामी ति'।

(१४४) 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा चतुग्गुणं संघाटिं पञ्ञापेसि। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'इङ्घ मे त्वं आनन्द, पानीयं आहर, पिपासितोऽस्मि आनन्द, पिविस्सामी ति'।

(१४५) एवं वुत्ते आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—'इदानि भन्ते, पञ्चमत्तानि सकटसतानि अतिक्कन्तानि तं चक्कच्छिन्नं उदकं

शूकर-मार्दव के खाने पर शास्ता को भारी रोग उत्पन्न हुआ।
विरेचनों के होते समय ही भगवान् ने कहा—चलो, कुसीनारा चलें॥

(१४३) तब भगवान् मार्ग से हटकर एक वृक्ष के नीचे गये। जाकर आयुष्मान् आनन्द से कहा—

"आनन्द ! मेरे लिये चौपेती संघाटी बिछा दो, मैं थक गया हूं, बैठूँगा।

(१४४) "अच्छा भन्ते !"—आयुष्मान् आनन्द ने चौपेती संकघाटी बिछा दी, भगवान् बिछे आसन पर बैठे। बैठ कर भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"आनन्द ! मेरे लिये पानी लाओ। प्यासा हूं, आनंद ! पानी पिऊँगा।"

(१४५) ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनद ने भगवान् से यह कहा—

परित्तं लुलितं आविलं सन्दति। अयं भन्ते, ककुत्था नदी अविदूरे अच्छोदिका सातोदिका सीतोदिका सेतका सुपतित्था रमणीया। एत्थ भगवा पानीयञ्च पिविस्सति, गत्तानि च सीतं करिस्सती ति'।

(१४६) दुतियम्पि खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'इङ्घ मे त्वं आनन्द, पानीयं आहर, पिपासितोऽस्मि आनन्द, पिविस्सामी ति'।

दुतियम्पि खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—'इदानि भन्ते, पञ्चमत्तानि सकटसतानि अतिक्कन्तानि तं चक्कच्छिन्नं उदकं परित्तं लुलितं आविलं सन्दति। अयं भन्ते, ककुत्था नदी अविदूरे अच्छोदिका सातोदिका सीतोदिका सेतका सुपतित्था रमणीया। एत्थ भगवा पानीयञ्च पिविस्सति, गत्तानि च सीतं करिस्सती ति'।

(१४७) ततियम्पि खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'इङ्घ मे त्वं आनन्द, पानीयं आहर, पिपासितोऽस्मि आनन्द पिविस्सामी ति'।

(१४८) 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा

"भन्ते ! अभी अभी पाँच सौ गाड़ियाँ निकली हैं। चक्कों से मथा हिंडा पानी मैला होकर बह रहा है। भन्ते ! यह सुंदर जलवाली, शीतल जलवाली, सफेद, सुप्रतिष्ठित रमणीय ककुत्था* नदी करीब में है। वहाँ (चल कर) भगवान् पानी पीयेंगे और शरीर को ठंडा करेंगे।

(१४६) दूसरी बार भी भगवान् ने ०।

(१४७) तीसरी बार भी भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—आनंद ! मेरे लिये पानी लाओ ० !"

(१४८) "अच्छा भन्ते !" कह भगवान् को उत्तर दे पात्र लेकर जहाँ

---

*बर्मी पिटक में 'ककुधा' पाठ है।

पत्तं गहेत्वा येन सा नदिका, तेनुपसङ्कमि। अथ खो सा नदिका चक्कच्छिन्ना परित्ता लुलिता आविला सन्दमाना आयस्मन्ते आनन्दे उपसङ्कमन्ते अच्छा विप्पसन्ना अनाविला सन्दित्थ। अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—'अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो, तथागतस्स महिद्धिकता महानुभावता! अयं हि सा नदिका चक्कच्छिन्ना परित्ता लुलिता आविला सन्दमाना मयि उपसङ्कमन्ते अच्छा विप्पसन्ना अनाविला सन्दती ति'! पत्तेन पानीयं आदाय, येन भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—'अच्छरियं भन्ते, अब्भुतं भन्ते, तथागतस्स महिद्धिकता महानुभावता! इदानि सा भन्ते, नदिका चक्कच्छिन्ना परित्ता लुलिता आविला सन्दमाना मयि उपसङ्कमन्ते अच्छा विप्पसन्ना अनाविला सन्दित्थ! पिवतु भगवा, पानीयं, पिवतु सुगतो पानीयन्ति'। अथ खो भगवा पानीयं अपायि।।

(१४९) तेन खो पन समयेन पुक्कुसो मल्लपुत्तो आलारस्स कालामस्स सावको कुसिनाराय पावं अद्धानमग्गप्पटिपन्नो होति।

वह नदी थी, वहाँ गये। तब वह चक्कों से मथे हिंडे मैले थोड़े पानी के साथ बहने वाली नदी, आयुष्मान् आनन्द के वहाँ पहुंचने पर स्वच्छ निर्मल (हो) बहने लगी। तब आयुष्मान् आनन्द को ऐसा हुआ—'आश्चर्य है! तथागत की महा-ऋद्धि, महानुभावता अद्भुत है। यह नदिका (=छोटी नदी) चक्कों से मथे हिंड़े मैले थोड़े पानी के साथ बह रही थी; सो मेरे आने पर स्वच्छ निर्मल बह रही है।' और पात्र में पानी भर कर भगवान् के पास ले गये। ले जाकर भगवान् से यह बोले—"० आश्चर्य है भन्ते! अद्भुत है भन्ते! वह नदिका निर्मल बह रही है। भन्ते! भगवान् पानी पियें, सुगत पानी पियें।" तब भगवान् ने पानी पिया।

(१४९) उस समय आलार कालाम का शिष्य पुक्कस मल्ल-पुत्र

अद्दस खो पुक्कसो मल्लपुत्तो भगवन्तं अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसिन्नं, दिस्वा, येन भगवा तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो पुक्कुसो मल्लपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"अच्छरियं भन्ते, अब्भुतं भन्ते, सन्तेन वत भन्ते, पब्बजिता विहारेन विहरन्ति ! भूतपुब्बं भन्ते, आलारो कालामो अद्धानमग्गपटिपन्नो मग्गा ओक्कम्म अविदूरे अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि । अथ खो भन्ते, पञ्चमत्तानि सकटसतानि आलारं कालामं निस्साय निस्साय अतिक्कमिंसु । अथ खो भन्ते, अञ्ञतरो पुरिसो तस्स सकटसतस्स पिट्ठितो पिट्ठितो आगच्छन्तो येन आलारो कालामो, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा आलारं कालामं एतदवोच—'अपि भन्ते ! पञ्चमत्तानि सकटसतानि अतिक्कन्तानि अद्दसाति ?

(१५०) न खो अहं आवुसो, अद्दसन्ति ॥

कुसीनारा और पावा के बीच, रास्ते में जा रहा था । पुक्कुस मल्ल-पुत्र ने भगवान् को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा । देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ—जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । पुक्कुस० ने भगवान से कहा—

"आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! प्रव्रजित (लोग) शांततर विहार से विहरते हैं । भन्ते ! पूर्वकाल में (एक बार) आलार कालाम रास्ता चलते, मार्ग से हटकर पास में दिन के विहार के लिये एक वृक्ष के नीचे बैठे । उस समय पाँच सौ गाड़ियाँ आलार कालाम के पीछे से गईं । तब उस गाड़ियों के सार्थ (=कारवाँ) के पीछे पीछे आते एक आदमी ने आलार कालाम के पास—जाकर पूछा—'क्या भन्ते ! पाँच सौ गाड़ियाँ (इधर से) निकलते देखा है ?'

(१५०) "आवुस ! मैंने नहीं देखा ।"

किं पन भन्ते, सद्दं अस्सोसी ति ?

न खो अहं आवुसो, सद्दं अस्सोसिन्ति ॥

किं पन भन्ते, सुत्तो अहोसी ति ?

न खो अहं आवुसो, सुत्तो अहोसिन्ति ।

किं पन भन्ते, सञ्ञी अहोसी ति ?

एवमावुसो ति ।

(१५१) सो त्वं भन्ते ! सञ्ञी समानो जागरो पञ्चमत्तानि सकटसतानि निस्साय निस्साय अतिक्कन्तानि नेव अद्दस, न पन सद्दं अस्सोसि। अपि हि ते भन्ते, संघाटि रजेन ओकिण्णा ति ?

'एवमावुसो ति' ।

(१५२) अथ खो भन्ते, तस्स पुरिसस्स एतदहोसि—'अच्छरियं

"क्या भन्ते ! आवाज सुनी ?"

"नहीं आवुस ! मैंने आवाज नहीं सुनी ।"

"क्या भन्ते ! सो गये थे ?"

"नहीं आवुस ! सोया नहीं था ।"

"क्या भन्ते ! होश में थे ?"

"हाँ, आवुस !"

(१५१) "तो भन्ते ! आपने होश में जागते हुए भी पीछे से निकली पाँच सौ गाड़ियों को न देखा, न (उनका) आवाज को सुना ? किन्तु (यह जो) आपकी संघाटी पर गर्द पड़ी है ?"

"हाँ ! आवुस।"

(१५२) "तब भन्ते ! उस पुरुष को हुआ—आश्चर्य है ! अद्भुत

वत भो, अब्भुतं वत भो, सन्तेन वत भो, पब्बजिता विहारेन विहरन्ति' ! यत्र हि नाम सञ्ञी समानो जागरो पञ्चमत्तानि सकटसतानि निस्साय निस्साय अतिक्कन्तानि नेव दक्खति, न पन सद्दं सोस्सती ! ति'॥ आलारे कालामे उलारं पसादं पवेदेत्वा पक्कामी ति।

(१५३) तं किं मञ्ञसि पुक्कुस, कतमं नु खो दुक्करतरं वा दुरभिसम्भवतरं वा, यो वा सञ्ञी समानो जागरो पञ्चमत्तानि सकटसतानि निस्साय निस्साय अतिक्कन्तानि नेव पस्सेय्य, न पन सद्दं सुणेय्य। यो वा सञ्ञी समानो जागरो देवे वस्सन्ते देवे गलगलायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया नेव पस्सेय्य, न पन सद्दं सुणेय्या ? ति ॥

(१५४) किञ्हि भन्ते, करिस्सन्ति पञ्च वा सकटसतानि, छ वा सकटसतानि, सत्त वा सकटसतानि, अट्ठ वा सकटसतानि, नव वा सकटसतानि, सकटसहस्सं वा सकटसतसहस्सं वा। अथ खो एतदेव दुक्कर-

है !! अहो प्रव्रजित लोग शान्त विहार से विहरते हैं, जो कि (इन्होंने) होश में, जागते हुये भी पाँच सौ गाड़ियों को न देखा, न (उनकी) आवाज को सुना।'—कह आलार कालाम के प्रति बड़ी श्रद्धा प्रकट कर चला गया।"

(१५३) "तो क्या मानते हो पुक्कुस ! कौन दुष्कर है, दुःसम्भव है—जो कि होश में जागते हुये पाँच सौ गाड़ियों का न देखना, न आवाज सुनना; अथवा होश में जागते हुये पानी के बरसते बादल के गड़ागड़ाते, बिजली के निकलते और अशनि (=बिजली) के गिरने के समय भी न (चमक) देखे न आवाज सुने ?"

(१५४) "क्या है भन्ते ! पाँच सौ गाड़ियाँ, छै सौ०, सात सौ० आठ सौ०, नौ सौ० दस सौ०, दस हजार०, या सौ हजार गाड़ियाँ ; यही

तरञ्चेव दुरभिसम्भवतरञ्च यो सञ्ञी समानो जागरो देवे वस्सन्ते देवे-गलगलायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया नेव पस्सेय्य, न पन सद्दं सुणेय्या ति ॥

(१५५) एकमिदाहं पुक्कुस, समयं आतुमायं विहरामि भुसागारे। तेन खो पन समयेन देवे वस्सन्ते देवेगलगलायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया अविदूरे भुसागारस्स द्वे कस्सका भातरो हता चत्तारो च बलिबद्दा। अथ खो पुक्कुस आतुमाय महाजनकायो निक्खमित्वा येन ते द्वे कस्सका भातरो हता चत्तारो च बलिबद्दा तेनुपसङ्कमि। तेन खो पनाहं पुक्कुस, समयेन भुसागारा निक्खमित्वा भुसागारद्वारे अब्भोकासे चङ्कमामि। अथ खो पुक्कुस, अञ्ञतरो पुरिसो तम्हा महाजनकाया, येनाहं तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो अहं पुक्कुस, तं पुरिसं एतदवोचं—'किन्नु खो एसो आवुसो, महाजनकायो सन्निपतितो ति ?' इदानि भन्ते, देवे वस्सन्ते देवे गलगलायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया द्वे कस्सका

दुष्कर दुःसम्भव है जो कि होश में जागते हुये पानी के बरसते० बिजली के गिरने के समय भी न (चमक) देखे, न आवज सुने।"

(१५५) "पुक्कुस ! एक समय मैं आतुमा के भुसागार में विहार करता था। उस समय देव के बरसते० बिजली के गिरने से दो भाई किसान और चार बैल मरे। तब आतुमा से आदमियों की भीड़ निकल कर वहाँ पहुंची, जहाँ पर कि वह दो भाई किसान और चार बैल मरे थे। उस समय पुक्कुस ! मैं भुसागार से निकल कर द्वार पर टहल रहा था। तब पुक्कुस ! उस भीड़ से निकलकर एक आदमी मेरे पास—आ—खड़ा होकर बोला—'भन्ते ! इस समय देव के बरसते० बिजली के गिरने से दो भाई किसान और चार बैल मर गये। इसीलिये यह भीड़ इकट्ठी हुई है।

भातरो हता चत्तारो च बलिबद्दा। एत्थेसो महाजनकायो सन्निपतितो ति'।

(१५६) त्वं पन भन्ते, क्व अहोसी ति ?

इधेव खो अहं आवुसो, अहोसिन्ति।

किं पन भन्ते, अद्दसा ति ?

न खो अहं आवुसो, अद्दसन्ति।

किं पन भन्ते, सद्दं अस्सोसी ति ?

न खो अहं आवुसो, सद्दं अस्सोसिन्ति।

किं पन भन्ते, सुत्तो अहोसी ति ?

न खो अहं आवुसो, सुत्तो अहोसिन्ति।

किं पन भन्ते सञ्ञी अहोसी ति ?

'एवमावुसो ति'।

आप भन्ते ! (उस समय) कहाँ थे ?'

(१५६) 'आवुस ! यहीं था।'

'क्या भन्ते ! आपने देखा नहीं ?

'नहीं, आवुस ! नहीं देखा ?

'क्या भन्ते ! शब्द सुना ?

'नहीं आवुस ! शब्द (भी) नहीं सुना !

'क्या भन्ते ! सो गये थे ?'

'नहीं आवुस ! सोया नहीं था।'

'क्या भन्ते। होश में थे ?'

'हाँ, आवुस !'

(१५७) सो त्वं भन्ते, सञ्ञी समानो जागरो देवे वस्सन्ते देवे गलगलायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया नेव अद्दस, न पन सद्दं अस्सोसी ति ? ॥

(१५८) 'एवमावुसो' ति ॥

(१५९) अथ खो पुक्कुस, तस्स पुरिसस्स एतदहोसि—'अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो, सन्तेन वत भो, पब्बजिता विहारेन विहरन्ति । यत्र हि नाम सञ्ञी समानो जागरो देव वस्सन्ते देवे गलगलायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया नेव दक्खति, न पन सद्दं सोस्सती' ति । मयि उलारं पसादं पवेदेत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामी ति ॥

(१६०) एवं वुत्ते पुक्कुसो मल्लपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—'एसाहं भन्ते, यो मे आलारे कालामे पसादो, तं महावाते वा ओपुनामि सीघसोताय वा नदिया पवाहेमि । अभिक्कन्तं भन्ते, अभिक्कन्तं भन्ते, सेय्यथापि

(१५७) 'तो भन्ते ! आपने होश में जागते हुये भी देव के बरसते॰ बिजली के गिरने को न देखा, न शब्द को सुना ?

(१५८) 'हाँ, आवुसे !'

(१५९) "तब पुक्कुस ! उस आदमी को हुआ—आश्चर्य है ! अद्भुत है !! अहो प्रव्रजित लोग शान्त विहार से विहरते हैं॰ न आवाज सुने ।'—कह मेरे प्रति बड़ी श्रद्धा प्रकट कर चला गया ।"

(१६०) ऐसा कहने पर पुक्कुस मल्लपुत्र ने भगवान् से यह कहा—

"भन्ते ! यह मैं, जो मेरा आलार कालाम में श्रद्धा (=प्रसाद) थी, उसे हवा में उड़ा देता हूं, या शीघ्र धारा वाली नदी में बहा

भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खिन्ती ति, एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भन्ते, भगवन्तं सरण गच्छामि, धम्मञ्च, भिक्खुसंघञ्च। उपासकं मं भगवा, धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतन्ति" ॥

(१६१) अथ खो पुक्कुसो मल्लपुत्तो अञ्ञातरं पुरिसं आमन्तेसि— 'इङ्घ मे त्वं भणे, सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं धारणीयं आहरा ति' ॥

(१६२) एवं भन्ते, ति खो सो पुरिसो पुक्कुसस्स मल्लपुत्तस्स पटिस्सुत्वा तं सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं धारणीयं आहरि। अथ खो पुक्कुसो मल्लपुत्तो तं सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं धारणीयं भगवतो उपनामेसि—'इदं भन्ते, सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं धारणीयं तं मे भगवा पटिगण्हातु अनुकम्पं उपादाया ति' ॥

देता हूं। आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! जैसे औंधे को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, भूले को रास्ता बतला दे अंधेरे में चिराग रख दे, कि आँख वाले रूप को देखें, ऐसे ही भन्ते! भगवान् ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया। यह मैं भन्ते! भगवान् की शरण जाता हूं, धर्म और भिक्षु संघ की भी। आज से मुझे भगवान् अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

(१६१) तब पुक्कुस मल्लपुत्र ने (अपने) एक आदमी से कहा— "आ रे! मेरे इंगुर के वर्ण वाले चमकते दुशाले को ले आ।"

(१६२) "अच्छा, भन्ते!"—कह उस आदमी ने पुक्कुस मल्लपुत्र को कह, ० दुशाले को ला दिया। तब पुक्कुस मल्लपुत्र ने ० दुशाला भगवान् को अर्पित किया—"भन्ते! कृपा कर के मेरे इस ० दुशाले को स्वीकार करें।"

(१६३) 'तेन हि पुक्कुस, एकेन मं अच्छादेहि, एकेन आनन्दन्ति'।

(१६४) 'एवं भन्ते' ति खो पुक्कुसो मल्लपुत्तो भगवतो पटिस्सुत्वा एकेन भगवन्तं अच्छादेसि, एकेन आयस्मन्तं आनन्दं। अथ खो भगवा पुक्कुसं मल्लपुत्तं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि संपहंसेसि। अथ खो सो पुक्कुसो मल्लपुत्तो भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो संपहंसितो उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि॥

(१६५) अथ खो आयस्मा आनन्दो अचिरपक्कन्ते पुक्कुसे मल्लपुत्ते तं सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं धारणीयं भगवतो कायं उपनामेसि। तं भगवतो कायं उपनामितं हतच्चिकं विय खायति। अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—'अच्छरियं भन्ते, अब्भुतं भन्ते, याव परिसुद्धो भन्ते,

(१६३) "तो पुक्कुस ! एक मुझे ओढ़ा दे, एक आनन्द को दें।"

(१६४) "अच्छा, भन्ते !"—कह, पुक्कुस मल्लपुत्र ने भगवान् को उत्तर दे, एक ० शाल भगवान् को ओढ़ा दिया, एक ० आयुष्मान् आनन्द को। तब भगवान् ने पुक्कुस मल्लपुत्र को धार्मिक कथा द्वारा संदर्शित=समुत्तेजित सम्प्रहर्षित किया। भगवान की धार्मिक कथा० सम्प्रहर्षित हो पुक्कस मल्लपुत्र आसन से उठ भगवान् को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया।

(१६५) तब पुक्कस मल्ल-पुत्र के जाने के थोड़ी ही देर बाद आयुष्मान् आनन्द ने उस (अपने) ० शाल को भगवान् के शरीर पर ढाँक दिया। भगवान् के शरीर पर किरण सी फूटी जान पड़ती थी। तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह कहा—"आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! कितना परिशुद्ध=पर्यवदात तथागत के शरीर का वर्ण है !!

तथागतस्स छविवण्णो परियोदातो। इदं भन्ते, सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं धारणीयं भगवतो कायं उपनामितं हतच्चिकं विय खायती ति' ॥

(१६६) एवमेतं आनन्द, एवमेतं आनन्द, द्वीसु कालेसु अतिविय तथागतस्स परिसुद्धो कायो होति, छविवण्णो परियोदातो। कतमेसु द्वीसु? [१] यञ्च आनन्द, रत्तिं तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झति। [२] यञ्च रत्तिं अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बायति। इमेसु खो आनन्द, द्वीसु कालेसु अतिविय तथागतस्स कायो परिसुद्धो होति छविवण्णो परियोदातो। अज्ज खो पनानन्द, रत्तिया पच्छिमे यामे कुसिनारायं उपवत्तने मल्लानं सालवने अन्तरेन यमकसालानं तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सती ति। आयामानन्द, येन ककुत्था नदी, तेनुपसङ्कमिस्सामा ति ॥

(१६७) 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ॥

भन्ते! यह ० दुशाला भगवान् के शरीर पर किरण सा जान पड़ता है।"

(१६६) "ऐसा ही है आनन्द! ऐसा ही है आनन्द! दो समयों में आनन्द! तथागत के शरीर का वर्ण अत्यन्त परिशुद्ध=पर्यवदात जान जान पड़ता है। किन दो समयों में? [१] जिस समय तथागत ने अनुपम सम्यक्-संबोधि (=परमज्ञान) का साक्षात्कार किया, और [२] जिस रात तथागत उपादि (=आवागमन के कारण रहित निर्वाण को प्राप्त होते हैं। आनन्द! इन दो समयों में ०। आनन्द आज रात के पिछले पहर कुसीनारा के उपवर्त्तन (नामक) मल्लों के शालवन में जोड़े शाल-वृक्षों के बीच तथागत का परिनिर्वाण होगा। आओ, आनन्द! जहाँ ककुत्था नदी है, वहाँ चलें।"

(१६७) "अच्छा, भन्ते!" कह आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को उत्तर दिया।

सिङ्गीवण्णं युगमट्ठं, पुक्कुसो अभिहारयि ।
तेन अच्छादितो सत्था, हेमवण्णो असोभथा ति ।।

(१६८) अथ खो भगवा महता भिक्खुसंघेय सद्धि येन ककुत्था नदी, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा ककुत्थं नदिं अज्झोगाहेत्वा न्हात्वा च पिवित्वा च पच्चुत्तरित्वा येन अम्बवनं तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं चुन्दकं आमन्तेसि—'इङ्घ मे त्वं चुन्दक, चतुग्गुणं संघाटिं पञ्ञापेहि । किलन्तोऽस्मि चुन्दक, निपज्जिस्सामी ति ।।

(१६९) 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा चुन्दको भगवतो पटिस्सुत्वा चतुग्गुणं संघाटिं पञ्ञापेसि । अथ खो भगवा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि पादेन पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो उट्ठानसञ्ञं मनसि करित्वा । आयस्मा पन चुन्दो तत्थेव भगवतो पुरतो निसीदि ।।

इंगुर वर्णवाले चमकते दुशाले को पुक्कुस ने अर्पण किया ।
उनसे आच्छादित बुद्ध सोने के वर्ण जैसे शोभा देते थे ।।

(१६८) तब महाभिक्षु-संघ के साथ भगवान् जहाँ ककुत्था नदी थी, वहाँ गये । जाकर ककुत्था नदी को अवगाहन कर, स्नान कर, पान कर, उतर कर, जहाँ अम्बवन (आम्रवन) था, वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् चुन्दक से बोले—"चुन्दक ! मेरे लिये चौपेती संघाटी बिछा दे । चुन्दक थक गया हूं, लेटूँगा ।"

(१६९) "अच्छा भन्ते ।"......तब भगवान् पैर पर पैर रख, स्मृति संप्रजन्य के साथ, उत्थान-संज्ञा मन में करके, दाहिनी करवट सिंह-शय्या से लेटे । आयुष्मान् चुन्दक वहीं भगवान् के सामने बैठे ।

(१७०) गन्त्वान बुद्धो नदियं ककुधं,
अच्छोदकं सातोदकं विप्पसन्नं ।
ओगाहि सत्था अकिलन्तरूपो,
तथागतो अप्पटिमो च लोके ।।
नहत्वा पिवित्वा चुन्दकेन सत्था,
पुरक्खतो भिक्खुगणस्स मज्झे ।
सत्था पवत्ता भगवा ध धम्मे,
उपागमि अम्बवनं महेसि ।
आमन्तयि चुन्दकं नाम भिक्खुं,
चतुग्गुणं सन्थर मे निपज्जं ।
सो मोदितो भावितत्तेन चुन्दो,
चतुग्गुणं सन्थरि खिप्पमेव ।
निपज्जि सत्था अकिलन्तरूपो,
चुन्दो पि तत्थ पमुखे निसीदि ।।

(१७०) बुद्ध उत्तम, सुन्दर स्वच्छ जलवाली ककुत्था नदी पर जा, लोक में आद्वितीय, शास्ता ने अ-क्लान्त हो स्नान किया।

स्नान कर पान कर चुन्दक को आगे कर भिक्षु-गण के बीच में (चलते)
धर्म के वक्ता प्रवक्ता महर्षि भगवान् आम्रवन में पहुंचे ।।

चुन्दक भिक्षु से कहा—चौपेती संघाटी बिछाओ, लेटूंगा।

आत्मसंयमी से प्रेरित हो तुरन्त चौपेती (संघाटी) को बिछा दिया।

अक्लान्त हो शास्ता लेट गये, चुन्दक भी वहाँ सामने बैठ गये ।।१८।।

तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—

(१७१) अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'यो खो पनानन्द, चुन्दस्स कम्मारपुत्तस्स कोचि विप्पटिसारं उप्पादेय्य,—'तस्स ते आवुसो चुन्द, अलाभा तस्स ते दुल्लद्धं, यस्स ते तथागतो पच्छिमं पिण्डपातं परिभुञ्जित्वा परिनिब्बुतो' ति। चुन्दस्स आनन्द, कम्मार-पुत्तस्स एवं विप्पटिसारो पटिविनेतब्बो। "तस्स ते आवुसो चुन्द, लाभा तस्स ते सुलद्धं, यस्स ते तथागतो पच्छिमं पिण्डपातं परिभुञ्जित्वा परिनिब्बुतो।"

(१७२) संमुखा मे तं आवुसो चुन्द! भगवतो सुतं। संमुखा पटिग्गहितं—"द्वे मे पिण्डपाता समा समफला समविपाका, अतिविय अञ्ञेहि पिण्डपातेहि महप्फलतरा च महानिसंसतरा च। कतमे द्वे? [१] यञ्च पिण्डपातं परिभुञ्जित्वा तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झति। [२] यञ्च पिण्डपातं परिभुञ्जित्वा तथागतो अनु-पादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बायति। इमे द्वे पिण्डपाता समा

(१७१) "आनन्द! शायद कोई चुन्द कर्मार पुत्र को चिंतित करे (=विप्पटिसार उपदहेय) (और कहे)—'आवुस चुन्द! अलाभ है तुझे, तूने दुर्लाभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिंडपात को भोजन कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुये।' आनन्द! चुन्द कर्मार-पुत्र की इस चिंता को दूर करना (और कहना)—'आवुस! लाभ है तुझे तूने सुलाभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिंडपात को भोजन कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुये।'

(१७२) आवुस चन्द! मैंने यह भगवान् के मुख से सुना, मुख से ग्रहण किया---'यह दो पिंड-पात समान फल वाले=समान विपाक वाले हैं, दूसरे पिंडपातों से बहुत ही महाफल-प्रद=महानृशंसतर हैं। कौन से दो? [१] जिस पिंडपात (=भिक्षा) को भोजन कर तथागत अनुत्तर सम्यक्-सबोधि (=बुद्धत्व) को प्राप्त हुये, [२] और जिस पिंडपात को

समफला समविपाका, अतिविय अञ्ञेहि पिण्डपातेहि महप्फलतरा च महानिसंसतरा च। आयुसंवत्तनिकं आयस्मता चुन्देन कम्मारपुत्तेन कम्मं उपचितं। वण्णसंवत्तनिकं आयस्मता चुन्देन कम्मारपुत्तेन कम्मं उपचितं। सुखसंवत्तनिकं आयस्मता चुन्देन कम्मारपुत्तेन कम्मं उपचितं। यससंवत्तनिकं आयस्मता चुन्देन कम्मारपुत्तेन कम्मं उपचितं। सग्गसंवत्तनिकं आयस्मता चुन्देन कम्मारपुत्तेन कम्मं उपचितं। अधिपतेय्यसंवत्तनिकं आयस्मता चुन्देन कम्मारपुत्तेन कम्मं उपचितन्ति॥" चुन्दस्स आनन्द, कम्मारपुत्तस्स एवं विप्पटिसारो पटिविनेतब्बो" ति।

(१७३) अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

(१७४) ददतो पुञ्ञं पवड्ढति, संयमतो वेरं न चीयति।
कुसलो च जहाति पापकं, रागदोसमोहक्खया स निब्बुतो ति॥

भाणवारं चतुत्थं॥ ४॥

भोजन कर तथागत अन्-उपादिशेष निर्वाण धातु (=दुःख-कारण-रहित निर्वाण) को प्राप्त हुये। आनन्द ! यह दो पिंडपात ०। चुन्द कर्मार पुत्र ने आयु प्राप्त कराने वाले कर्म को सचित किया; ० वर्ण ०; ० सुख ०; ० यश ०; ० स्वर्ग; ० आधिपत्य प्राप्त कराने वाले कर्म को संचित किया। आनन्द ! चुन्द कर्मार पुत्र की चिन्ता को इस प्रकार दूर करना।"

(१७३) तब भगवान् ने इसी अर्थ को जानकर उसी समय यह उदान कहा—

(१७४) "(दान) देने से पुण्य बढ़ता है, संयम से वैर नहीं संचित होता।

सज्जन बुराई को छोड़ता है, (और) राग-द्वेष-मोह के क्षय से वह निर्वाण प्राप्त करता है॥ १७॥

(इति) चतुर्थ भाणवार॥ ४॥

(१७५) अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'आयस्मानन्द, येन हिरञ्ञवतिया नदिया पारिमं तीरं येन कुसीनारा उपवत्तनं मल्लानं सालवनं तेनुपसङ्कमिस्सामा' ति ।

(१७६) 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ।

(१७७) अथ खो भगवा महता भिक्खुसंघेन सद्धिं येन हिरञ्ञवतिया नदिया पारिमं तीरं, येन कुसिनारा उपवत्तनं मल्लानं सालवनं, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'इङ्घ मे त्वं आनन्द, अन्तरेन यमकसालानं उत्तरसीसकं मञ्चकं पञ्ञापेहि । किलन्तोऽस्मि आनन्द, निपज्जिस्सामी ति' ।

(१७८) 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा अन्तरेन यमकसालानं उत्तरसीसकं मञ्चकं पञ्ञापेसि । अथ खो भगवा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि पादेन पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो ।

जीवन की अन्तिम घड़ियाँ

(१७५) तब भगवान् ने आयुष्मान आनन्द को आमंत्रित किया—"आओ आनन्द जहाँ हिरणयवती नदी का परला तीर है, जहाँ कुसीनारा के मल्लों का शाल वन उपवत्तन है, वहाँ चलें ।"

(१७६) "अच्छा भन्ते !" ० ।

(१७७) तब भगवान महा भिक्षु-संघ के साथ जहाँ हिरणयवती ० मल्लों का शाल वन था, वहाँ गये । जाकर आयुष्मान आनन्द से बोले—"आनन्द ! यमक (=जुलवें) शालों के बीच में उत्तर की ओर सिरहाना कर चारपाई (=मंचक) बिछा दे । थका हूं, आनन्द लेटूँगा !"

(१७८) अच्छा भन्ते !" ० । तब भगवान ० दाहिनी करवट सिंह-शय्या मे लेटे ।

(१७९) तेन खो पन समयेन यमकसाला सब्बपालिफुल्ला होन्ति अकालपुप्फेहि। ते तथागतस्स सरीरं ओकिरन्ति अज्झोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथातगस्य पूजाय। दिब्बानि पि मन्दारव पुप्फानि अन्तलिक्खा पपतन्ति। तानि तथागतस्स सरीरं ओकिरन्ति अज्झोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय। दिब्बानि पि चन्दन चुण्णानि अन्तलिक्खा पपतन्ति, तानि तथागतस्स सरीरं ओकिरन्ति अज्झोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्य पूजाय। दिब्बानि पि तुरियानि अन्तलिक्खे वज्जन्ति तथागतस्स पूजाय। दिब्बानि पि संगीतानि अन्तलिक्खे वत्तन्ति तथागतस्स पूजाय।

(१८०) अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'सब्ब पालि फुल्ला खो आनन्द, यमकसाला अकालपुप्फेहि। ते तथागतस्स सरीरं ओकिरन्ति अज्झोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय। दिब्बानि पि मन्धारवपुप्फानि अन्तलिक्खा पपतन्ति। तानि तथागतस्स सरीरं ओकिरन्ति अज्झोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय। दिब्बानि पि चन्दनचुण्णानि अन्तलिक्खा पपतन्ति तानि तथागतस्स सरीरं ओकिरन्ति अज्झोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय। दिब्बानि पि तुरियानि अन्तलिक्खे वज्जन्ति तथागतस्स पूजाय दिब्बानि पि संगीतानि अन्तलिक्खे

(१७९) उस समय अकाल ही में यह जोड़े शाल खूब फूले हुये थे। तथागत की पूजा के लिये वे (फूल) तथागत के शरीर पर बिखरते थे। दिव्य मन्दार-पुष्प आकाश से गिरते थे, वह तथागत के शरीर पर बिखेरते थे। दिव्य चंदन चूर्ण ०। तथागत की पूजा के लिये आकाश में दिव्य वाद्य बजते थे। ० दिव्य संगीत ०,

(१८०) तब भगवान ने आयुष्मान आनन्द को संबोधित किया — आनन्द ! इस समय अकाल ही में यह जोड़े शाल खूब फूले हुये हैं।०। किन्तु, आनन्द ! इससे तथागत सत्कृत गुरुकृत, मानित-पूजित नहीं होते।

वत्तन्ति तथागतस्स पूजाय। "न खो आनन्द ! एत्तावता तथागतो सक्कतो वा होति गरुकतो वा मानितो वा पूजितो वा अपचितो वा। यो खो आनन्द, भिक्खु वा भिक्खुनी वा उपासको वा उपासिका वा धम्मानुधम्मपटिपन्नो विहरति सामिचिपटिपन्नो अनुधम्मचारी, सो तथागतं सक्करोति गरुकरोति मानेति पूजेति अपचियति परमाय पूजाय। तस्मातिहानन्द ! धम्मानुधम्मपटिपन्ना विहरिस्साम सामिचिपटिपन्ना अनुधम्मचारिनो, ति। एवं हि वो आनन्द ! सिक्खितब्बन्ति।"

(१८१) तेन खो पन समयेन आयस्मा उपवाणो भगवतो पुरतो ठितो होति भगवन्तं बीजयमानो। अथ खो भगवा आयस्मन्तं उपवाणं अपसारेसि—

(१८२) "अपेहि भिक्खु, मा मे पुरतो अट्ठासी ति।"

(१८३) अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—"अयं खो आयस्मा उपवाणो दीघरत्तं भगवतो उपट्ठाको सन्तिकावचरो समीपचारी।

आनन्द ! जो कि भिक्षु या उपासिका धर्म के मार्ग पर आरूढ़ हो विहरता है, यथार्थ मार्ग पर आरूढ़ हो धर्मानुसार आचरण करने वाला होता है; उससे तथागत ० पूजित होते हैं। ऐसा आनन्द! तुम्हें सीखना चाहिये।"

(१८१) उस समय आयुष्मान उपवान भगवान पर पंखा झलते भगवान के सामने खड़े थे। तब भगवान ने आयुष्मान उपवान को हटा दिया—

(१८२) "हट जाओ, भिक्षु ! मत मेरे सामने खड़े होओ।"

(१८३) तब आयुष्मान उपवान चिरकाल तक भगवान के समीप

अथ च पन भगवा पच्छिमे काले आयस्मन्तं उपवाणं अपसारेति—'अपेहि भिक्खु, मा मे पुरतो अट्ठासी ति'। कोनु खो हेतु को पच्चयो यं भगवा आयस्मन्तं उपवाणं अपसारेसि—'अपेहि भिक्खु, मा मे पुरतो अट्ठासी ति' ?

(१८४) अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—

अयं भन्ते, आयस्मा उपवाणो दीघरत्तं भगवतो उपट्ठाको सन्तिकावचरो समीपचारी। अथ च पन भगवा पच्छिमे काले आयस्मन्तं उपवाणं अपसारेति—'अपेहि भिक्खु, मा मे पुरतो अट्ठासी ति'। कोनु खो भन्ते, हेतु को पच्चयो, यं भगवा आयस्मन्तं उपवाणं अपसारेति—'अपेहि भिक्खु, मा मे पुरतो अट्ठासी' ति।

(१८५) येभुय्येन आनन्द, दससु लोकधातूसु देवता सन्निपतिता तथागतं दस्सनाय। यावता आनन्द, कुसिनारा उपवत्तनं मल्लानं सालवनं समन्ततो द्वादस योजनानि नत्थि सो पदेसो वालग्गकोटिनित्तुदनमत्तोपि

चारी=सन्तिकावचर उपास्थक रहे हैं। किन्तु, अन्तिम समय में भगवान ने उन्हें हटा दिया—हट जाओ ! भिक्षु ०। क्या हेतु=प्रत्यय है, जो कि भगवान आयुष्मान उपवान को हटा दिया—० ?'

(१८४) तब आयुष्यान आनन्द ने भगवान से यह कहा—

"भन्ते ! यह आयुष्मान उपवान चिरकाल तक भगवान के ० उपास्थक रहे हैं। ० क्या हेतु है जो आपने उन्हें सामने से हटाये हैं ?"

(१८५) "आनन्द ! दसों लोक-धातुओं के बहुत से देवता तथागत के दर्शन के लिये एकत्रित हुये हैं। आनन्द ! जितना (यह) कुसीनारा का उपवर्तन मल्लों का शालवन है, उसकी चारों ओर बारह योजन

महेसक्खाहि देवताहि अप्फुटो। देवता आनन्द, उज्झायन्ति दूरा च वतम्हा आगता तथागतं दस्सनाय—'कदाचि रत्तिया पच्छिमे यामे करहचि तथागता लोके उप्पज्जन्ति अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा। अज्जेव तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति।' 'अयं च महेसक्खो भिक्खु भगवतो पुरतो ठितो ओवारेन्तो। न मयं लभाम पच्छिमे काले तथागतं दस्सनाया ति'।

(१८६) 'कथंभूता पन भन्ते, भगवा देवता मनसि करोन्ति' ति?

(१८७) "सन्तानन्द, देवता आकासे पथवीसञ्ञिनियो। केसे पकिरिय कन्दन्ति। बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति। छिन्नपातं पपतन्ति। आवट्टन्ति विवट्टन्ति। 'अति खिप्पं भगवा परिनिब्बायिस्सति, अति खिप्पं सुगतो, परिनिब्बायिस्सति। अतिखिप्पं चक्खुमा, लोके अन्तरधायिस्सती ति।' सन्तानन्द, देवता पथवियं पथवीसञ्ञिनियो। केसे पकिरिय कन्दन्ति। बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति। छिन्नपातं पपतन्ति। आवट्टन्ति विवट्टन्ति। 'अति

तक बाल के नोक गड़ाने भर के लिए भी स्थान नहीं है, जहाँ कि महेशाख्य देवता न हों। आनन्द! देवता परेशान हो रहे हैं—'हम तथागत के दर्शनार्थ दूर से आये हैं। तथागत अर्हत सम्यक् संबुद्ध कभी कभी ही लोक में उत्पन्न होते हैं। आज ही रात के अन्तिम पहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा। और यह महेशाख्य (=प्रतापी) भिक्षु ढाँकते हुये भगवान के सामने खड़ा है। अन्तिम समय में हमें तथागत का दर्शन नहीं मिल रहा है।

(१८६) "भन्ते! भगवान देवताओं के बारे में कैसे देख रहे हैं?"

(१८७) "आनन्द! देवता आकाश को पृथिवी ख्याल कर बाल खोले रो रहे हैं। हाथ पकड़कर चिल्ला रहे हैं। कटे (वृक्ष) की भाँति भूमि पर गिर रहे हैं। (यह कहते) लोट पोट रहे हैं—'बहुत जल्दी भगवान निर्वाण को

खिप्पं भगवा परिनिब्बायिस्सति' अति खिप्पं सुगतो परिनिब्बायिस्सति। अति खिप्पं चक्खुं लोके अन्तरधायिस्सती" ति।

या पन देवता वीतरागा, ता सता सम्पजाना अधिवासेन्ति "अनिच्चा सङ्खारा तं कुतेत्थ लब्भाति"।

(१८८) "पुब्बे भन्ते, दिसासु वस्सं वुत्था भिक्खू आगच्छन्ति तथागतं दस्सनाय, ते मयं लभाम मनोभावनीये भिक्खू दस्सनाय, लभाम पयिरूपासनाय। भगवतो पन मयं भन्ते, अच्चयेन न लभिस्साम मनोभावनीये भिक्खू दस्सनाय न लभिस्साम पयिरुपासनाया ति'।

(१८९) "चत्तारिमानि आनन्द, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयानि संवेजनीयानि ठानानि। कतमानि चत्तारि?

[१] 'इध तथागतो जातो ति' आनन्द, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयं संवेजनीयं ठानं।

प्राप्त बहुत शीघ्र सुगत निर्वाण को प्राप्त हो रहे हैं। बहुत शीघ्र चक्षुमान (=बुद्ध) लोक से अन्तर्धान हो रहे हैं।' और जो देवता होश-चेत वाले हैं, वह होश चेत स्मृति संप्रजन्यों के साथ सह रहे हैं--'संस्कृत (=कृत वस्तुयें) अनित्य हैं। सो कहाँ मिल सकता है'।"

(१८८) "भन्ते! पहिले दिशाओं में वर्षावास कर भिक्षु भगवान के दर्शनार्थ आते थे। उन मनोभावनीय भिक्षुओं का दर्शन, सत्संग हमें मिलता था। किन्तु भन्ते! भगवान के बाद हमें मनोभावनीय भिक्षुओं का दर्शन, नहीं मिलेगा।

(१८९) "आनन्द! श्रद्धालु कुल-पुत्र के लिए यह चार स्थान दर्शनीय, संवेजनीय (=वैराग्यप्रद) हैं। कौन से चार? [१] 'यहाँ

[२] 'इध तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो ति' आनन्द, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयं संवेजनीयं ठानं ।

[३] 'इध तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितन्ति' आनन्द, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयं संवेजनीयं ठानं ।

[४] 'इध तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बुतो ति' आनन्द, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयं संवेजनीयं ठानं ।

"इमानि खो आनन्द, चत्तारि सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयानि संवेजनीयानि ठानानि । आगमिस्सन्ति खो आनन्द, सद्धा भिक्खू भिक्खुनियो उपासका उपासिकायो, 'इध तथागतो जातोति पि' । 'इध तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धोति पि' । 'इध तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितन्ति पि' । 'इध तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बुतोति पि' । 'ये हि केचि आनन्द, चेतिय चारिकं आहिण्डन्ता पसन्नचित्ता कालं करिस्सन्ति, सब्बे ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिस्सन्ती" ति ।

तथागत उत्पन्न हुये (=लुम्बिनी)' यह स्थान श्रद्धालु ० ! [२] यहाँ तथागत ने अनुत्तर सम्यक् संबोधि को प्राप्त किया' (=बोध गया) ०। [३] यहाँ तथागत ने अनुत्तर (=सर्वश्रेष्ठ) धर्मचक्र को प्रवर्तन किया (=सारनाथ) ०। [४] 'यहाँ तथागत अनुपादिशेष निर्वाण-धातु को प्राप्त हुये (=कुसीनारा) ०। ० यह चार दर्शनीय ० हैं। आनन्द! श्रद्धालु भिक्षु भिक्षुणियाँ उपासक उपासिकायें (भविष्य में यहाँ) आवेंगी—'यहाँ तथागत उत्पन्न हुये,' ० 'यहाँ तथागत ० निर्वाण ० को प्राप्त हुये... ।"

(१९०) 'कथं मयं भन्ते, मातुगामे पटिपज्जामा' ति ?

"अदस्सनं आनन्दा" ति ।

"दस्सने भगवा, सति कथं पटिपज्जितब्बं" ति ?

"अनालापो आनन्दा" ति ।

"आलपन्तेन पन भन्ते, कथं पटिपज्जितब्बं" ति ?

"सति आनन्द, उपट्ठापेतब्बा" ति ।

(१९१) 'कथं मयं भन्ते, तथागतस्स सरीरे पटिपज्जामा' ति ?

"अब्यावटा तुम्हे आनन्द, होथ तथागतस्स सरीरपूजाय । इङ्घ तुम्हे आनन्द, सारत्थे अनुयुज्जथ; सारत्थे अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरथ ।

(स्त्रियों के प्रति भिक्षुओं का बर्ताव)

(१९०) "भन्ते ! स्त्रियों के साथ हम कैसा बर्ताव करेंगे ?"

"अ-दर्शन (=न देखना), आनन्द !"

"दर्शन होने पर भगवान कैसे बर्ताव करेंगे ?"

"आलाप (=बात) न करना, आनन्द !"

"बात करने वाले को कैसा करना चाहिये ?"

"स्मृति (=होश) को सँभाले रखना चाहिये ?"

चक्रवर्ती की दाहक्रिया

(१९१) "भन्ते तथागत के शरीर को हम कैसे करेंगे ?" आनन्द ! तथागत की शरीर-पूजा से तुम वेपरवाह रहो। तुम आनन्द, सच्चे पदार्थ (=सदर्थ) के लिये प्रयत्न करना, सत्-अर्थ के लिये उद्योग करना। सत्-अर्थ में अप्रमादी, उद्योगी, आत्मसंयमी हो विहरना हैं, आनन्द ! क्षत्रिय

सन्तानन्द, खत्तियपण्डिता पि ब्राह्मणपण्डिता पि गहपतिपण्डिता पि तथागते अभिप्पसन्ना; ते तथागतस्स सरीरपूजं करिस्सन्ती" ति ।

(१९२) "कथं पन भन्ते, तथागतस्स सरीरे पटिपज्जितब्बं" ति ?

'यथा खो आनन्द, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ति, एवं तथातगस्स सरीरे पटिपज्जितब्बं' ति ।

(१९३) "कथं पन भन्ते, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ती" ति ?

(१९४) "रञ्ञो आनन्द, चक्कवत्तिस्स सरीरं अहतेन वत्थेन वेठेन्ति । अहतेन वत्थेन वेठेत्वा विहतेन कप्पासेन वेठेन्ति । विहतेन कप्पासेन वेठेत्वा अहतेन वत्थेन वेठेन्ति । एतेनुपायेन पञ्चहि युगसतेहि रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरं वेठेत्वा आयसाय तेलदोणिया पक्खिपित्वा अञ्ञिस्सा

पंडित भी, ब्राह्मण पण्डित भी, गृहपति पंडित भी, तथागत में अत्यन्त अनुरक्त हैं वह तथागत की शरीर-पूजा करेंगे ।"

(१९२) "भन्ते ! तथागत के शरीर को कैसे करना चाहिये ?" जैसे आनन्द ! राजा चक्रवर्ती के शरीर के साथ करना होता है, वैसे तथागत के शरीर को करना चाहिये ।"

(१९३) "भन्ते ! राजा चक्रवर्ती के शरीर के साथ कैसे किया जाता है !"

(१९४) "आनन्द ! राजा चक्रवर्ती के शरीर को नये वस्त्र से लपेटते हैं; नये वस्त्र से लपेट कर धुनी रुई से लपेटते हैं । धुनी रुई से लपेट कर नये वस्त्र से लपेटते हैं । इस प्रकार पाँच सौ जोड़े वस्त्रों से

आयसाय दोणिया पटिकुज्जित्वा सब्बगन्धानं चितकं करित्वा रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरं झापेन्ति। चतुमहापथे रञ्ञो चक्कवत्तिस्स थूपं करोन्ति। एवं खो आनन्द, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ति। यथा खो आनन्द, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ति, एवं तथागतस्स सरीरे पटिपज्जितब्बं। चतुमहापथे तथागतस्स थूपो कातब्बो। तत्थ ये मालं वा गन्धं वा चुण्णकं वा आरोपेस्सन्ति वा अभिवादेस्सन्ति वा चित्तं वा पदादेस्सन्ति। तेसं तं भविस्सति दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

(१९५) "चत्तारो मे आनन्द, थूपारहा। कतमे चत्तारो ?

[१] तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो थूपारहो। [२] पच्चेक सम्बुद्धो थूपारहो। [३] तथागतस्स सावको थूपारहो, [४] राजा चक्कवत्ती थूपारहो, ति।

"किञ्चानन्द, अत्थवसं पटिच्च तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो

से लपेट कर तेल की लोहद्रोणी (=दोन) में रखकर, दूसरी लोह-द्रोणी से ढाँक कर, सभी गंधों (वाले काष्ठ) की चिता बनाकर, राजा चक्रवर्ती के शरीर को जलाते हैं; जलाकर बड़े चौरस्ते पर राजा चक्रवर्ती का स्तूप बनाते हैं।" "वहाँ आनन्द ! जो माला, गंध या चूर्ण चढ़ायेंगे, या अभिवादन करेंगे, या चित्त प्रसन्न करेंगे तो वह दीर्घ काल तक उनके हित-सुख के लिये होगा।

(१९५) आनन्द ! चार स्तूपार्ह (=स्पूत बनाने योग्य) हैं। कौन से चार ? [१] तथागत सम्यक् संबुद्ध स्पूत बनाने योग्य है। [२] प्रत्येक संबुद्ध ०। [३] तथागत का श्रावक (=शिष्य) ०। [४] चक्रवर्ती राजा आनन्द ! स्तूप बनाने योग्य है।

सो क्यों आनन्द ? तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध स्तूपार्ह हैं ! यह

थूपारहो ? 'अयं तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स थूपो' ति आनन्द, बहुजना चित्तं पसादेन्ति, ते तत्थ चित्तं पसादेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। इदं खो आनन्द, अत्थवसं पटिच्च तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो थूपारहो।

"किञ्चानन्द, अत्थवसं पटिच्च पच्चेकसम्बुद्धो थूपारहो ? 'अयं तस्स भगवतो पच्चेकसम्बुद्धस्स थूपो' ति आनन्द, बहुजना चित्तं पसादेन्ति, ते तत्थ चित्तं पसादेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। इदं खो आनन्द, अत्थवसं पटिच्च पच्चेकसम्बुद्धो थूपारहो।

"किञ्चानन्द, अत्थवसं पटिच्च तथागतस्स सावको थूपारहो ? 'अयं तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सावकस्स थूपो' ति आनन्द, बहुजना चित्तं पसादेन्ति। ते तत्थ चित्तं पसादेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। इदं खो आनन्द, अत्थ वसं पटिच्च तथागतस्स सावको थूपारहो।

"किञ्चानन्द, अत्थवसं पटिच्च राजा चक्कवत्ती थूपारहो ? 'अयं तस्स धम्मिकस्स धम्मरञ्ञो थूपो' ति आनन्द, बहुजना चित्तं पसादेन्ति। ते तत्थ चित्तं पसादेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। इदं खो आनन्द, अत्थवसं पटिच्च राजा चक्कवत्ती थूपारहो। इमे खो आनन्द, चत्तारो थूपारहा ति।

उन भगवान ० संबुद्ध का स्तूप है—(सोचकर) आनन्द ! बहुत से लोग चित्त को प्रसन्न करेंगे। चित्त को प्रसन्न कर मरने के बाद सुगति स्वर्ग लोक में उत्पन्न होंगे। इस प्रयोजन से आनन्द ! तथागत ० स्तूपार्ह हैं। ०। किस लिये आनन्द ! राजा चक्रवर्ती स्तूपार्ह हैं ? आनन्द ! यह धार्मिक धर्मराज का स्पूत है, सोच आनन्द ! बहुत से आदमी चित्त को प्रसन्न करेंगे ०। ० आनन्द ! यह चार स्तूपार्ह हैं।

(१९६) अथ खो आयस्मा आनन्दो विहारं पविसित्वा कपिसीसं आलम्बित्वा रोदमानो अट्ठासि। 'अहञ्च वतम्हि सेखो सकरणीयो। सत्थु च मे परिनिब्बानं भविस्सति यो मम अनुकम्पको' ति।

(१९७) अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—'कहंनु खो भिक्खवे, आनन्दो' ति ?

(१९८) 'एसो भन्ते, आयस्मा आनन्दो विहारं पविसित्वा कपिसीसं आलम्बित्वा रोदमानो ठितो। 'अहञ्च वतम्हि सेखो सकरणीयो। सत्थु च मे परिनिब्बानं भविस्सति यो मम अनुकम्पको' ति।

(१९९) अथ खो भगवा अञ्ञतरं भिक्खुं आमन्तेसि,—'एहि त्वं भिक्खु, मम वचनेन आनन्दं आमन्तेहि सत्था तं आवुसो आनन्द, आमन्तेती' ति।

'एवं भन्ते', ति खो सो भिक्खु भगवतो पटिस्सुत्वा येनायस्मा आनन्दो,

आनन्द के गुण

(१९६) तब आयुष्मान् आनन्द विहार में जाकर कपिसीस (=खूँटी) पकड़कर रोते खड़े हुये—"हाय ! मैं शैक्ष्य=सकरणीय हूं। और जो मेरे अनुकंपक शास्ता हैं, उनका परिनिर्वाण हो रहा है !

(१९७) भगवान ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—"भिक्षुओं ! आनन्द कहाँ है ?"

(१९८) "यह भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द विहार (=कोठरी) में जाकर० रोते खड़े हैं ०।"

(१९९) "आ ! भिक्षु ! मेरे वचन से तू आनन्द को कह—'आवुस

तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—'सत्था तं आवुसो आनन्द, आमन्तेती' ति।

(२००) 'एवमावुसो', ति खो आयस्मा आनन्दो तस्स भिक्खुनो पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।

(२०१) एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं भगवा एतदवोच—"अलं आनन्द, मा सोचि, मा परिदेवि। ननु एवं आनन्द, मया पटिगच्चेव अक्खातं सब्बेहेव पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो अञ्ञथाभावो, तं कुतेत्थ आनन्द, लब्भा, यन्तं जातं भूतं सङ्खतं पलोक धम्मं तं वत तथागतस्सा पि सरीरं मा पलुज्जी ति। नेतं ठानं विज्जति॥ दीघरत्तं खो ते आनन्द, तथागतो पच्चुपट्ठितो मेत्तेन कायकम्मेन हितेन सुखेन अद्वयेन अप्पमाणेन, मेत्तेन वची कम्मेन हितेन सुखेन अद्वयेन अप्पमाणेन,

आनन्द !' शास्ता तुम्हें बुला रहे हैं।" "अच्छा, भन्ते !"

(२००) आयुष्मान आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आकर अभिवादन कर एक ओर बैठे।

(२०१) आयुष्मान आनन्द से भगवान् ने कहा—

"नहीं आनन्द ! मत शोक करो, मत रोओ ! मैंने तो आनन्द ! पहिले ही कह दिया है—सभी प्रियों = मनापों से जुदाई० होनी है, सो वह आनन्द ! कहाँ मिलने वाला है। जो कुछ जात (= उत्पन्न = भूत = संस्कृत है, सो नाश होने वाला है। 'हाय ! वह न नाश हो' यह संभव नहीं। आनन्द तूने दीर्घरात्र (= चिरकाल) तक अप्रमाण मैत्रीपूर्ण कायिक-कर्म से तथागत की सेवा की है। मैत्रीपूर्ण वाचिक कर्म से ०। ० मैत्रीपूर्ण

मेत्तेन मनोकम्मेन हितेन सुखेन अद्वयेन अप्पमाणेन। कतपुञ्ञोऽसि त्वं आनन्द, पधानमनुयुञ्ज खिप्पं होहिसि अनासवो" ति।

(२०२) अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—'ये पि ते भिक्खवे, अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा, तेसंऽपि भगवन्तानं एतपरमायेव उपट्ठाका अहेसुं। सेय्यथापि, मय्हं आनन्दो। ये पि ते भिक्खवे, भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा। तेसं पि भगवन्तानं एतपरमायेव उपट्ठाका भविस्सन्ति। सेय्यथापि, मय्हं आनन्दो। पण्डितो भिक्खवे, आनन्दो मेधावी, भिक्खवे, आनन्दो जानाति अयं कालो तथागतं दस्सनाय उपसङ्कमितुं भिक्खूनं, अयं कालो भिक्खुनीनं, अयं कालो उपासकानं, अयं कालो उपासिकानं, अयं कालो रञ्ञो राजमहामत्तानं, तित्थियानं तित्थियसावकानन्ति।

(२०३) "चत्तारो मे भिक्खवे, अच्छरिया अब्भुत धम्मा आनन्दे।

मानसिक कर्म से ०। आनन्द! तू कृतपुण्य है। प्रधान (=निर्वाण-साधन) में लग जल्दी अनास्रव (=मुक्त) हो जा।"

(२०२) तब भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया—

"भिक्षुओं! जो तथागत अर्हत्-सम्यक्-सम्बुद्ध अतीत काल में हुए, उन भगवानों के भी उपस्थाक (=चिर सेवक) इतने ही उत्तम थे, जैसा कि मेरा (उपस्थाक) आनन्द। भिक्षुओं! जो तथागत ० भविष्य में होंगे ०। भिक्षुओं! आनन्द पंडित है। भिक्षुओं! आनन्द मेधावी है। वह जानता है—यह काल भिक्षुओं का तथागत के दर्शनार्थ जाने का है, यह काल भिक्षुणियों का है, यह काल उपासकों का है, यह काल उपासिकाओं का है। यह काल राजा का ० राज-महामात्य का ० तैर्थिकों का ० तैर्थिक-श्रावकों का है।

(२०३) "भिक्षुओं! आनन्द में यह चार आश्चर्य अद्भुत बातें

कतमे चत्तारो ? [१] सचे भिक्खवे, भिक्खुपरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ताव भिक्खवे, भिक्खुपरिसा होति, अथ खो आनन्दो तुण्हीहोति। [२] सचे भिक्खवे, भिक्खुनीपरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सवेन सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अवित्ताव भिक्खवे, भिखुनीपरिसा होति, अथ खो आनन्दो तुण्हीहोति। [३] सचे भिक्खवे, उपासकपरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ताव भिक्खवे, उपासकपरिसा होति, अथ खो आनन्दो तुण्हीहोति। [४] सचे भिक्खवे, उपासिकपरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ताव भिक्खवे, उपासिकापरिसा होति, अथ खो आनन्दो तुण्हीहोति। इमे खो भिक्खवे, चत्तारो अच्छरिया अब्भुत धम्मा आनन्दे।

(२०४) "चत्तारो मे भिक्खवे, अच्छरिया अब्भुत धम्मा रञ्ञो चक्कवत्तिम्हि। कतमे चत्तारो ?

(=धर्म) हैं। कौन सी चार ? [१] यदि भिक्षु-परिषद् आनन्द का दर्शन करने जाती है, तो दर्शन से सन्तुष्ट हो जाती है। वहाँ यदि आनन्द धर्म पर भाषण करता है, भाषण से भी सन्तुष्ट हो जाती है; भिक्षुओं ! भिक्षु-परिषद् अ-तृप्त ही रहती है, जब कि आनन्द चुप हो जाता है। [२] यदि भिक्षुणी-परिषद् ०। [३] यदि उपासक-परिषद् ०। [४] यदि उपासिका-परिषद ०। भिक्षुओं ! यह चार ०।

चक्रवर्ती के चार गुण

(२०४) "भिक्षुओं ! चक्रवर्ती राजा में यह चार आश्चर्य, अद्भुत

[१] "सचे भिक्खवे, खत्तिया-परिसा राजानं चक्कवत्तिं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे राजा चक्कवत्ती भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ताव भिक्खवे, खत्तिय-परिसा होति, अथ खो राजा चक्कवत्ती तुण्ही होति। [२-३-४] सचे भिक्खवे, ब्राह्मणपरिसा, गहपतिपरिसा, समणपरिसा, राजानं चक्कवत्तिं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे राजा चक्कवत्ती भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ताव भिक्खवे! ।०। समणपरिसा होति, अथ खो राजा चक्कवत्ती तुण्ही होति' ति। एवमेव खो भिक्खवे, चत्तारो मे अच्छरिया अब्भुत धम्मा आनन्दे। सचे भिक्खवे, भिक्खुपरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ताव भिक्खवे, भिक्खुपरिसा होति, अथ खो आनन्दो तुण्ही होति। सचे भिक्खुनीपरिसा, उपासकपरिसा, उपासिकापरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ताव भिक्खवे, उपासिका-परिसा होति, अथ खो आनन्दो तुण्ही होति। इमे खो भिक्खवे, चत्तारो अच्छरिया अब्भुत धम्मा आनन्दे ति'।

बातें हैं। कौनसी चार? [१] यदि भिक्षुओं! क्षत्रिय-परिषद् चक्रवर्ती राजा का दर्शन करने जाती है, तो दर्शन से सन्तुष्ट हो जाती है। वहाँ यदि चक्रवर्ती राजा भाषण करता है, तो भाषण से सन्तुष्ट हो जाती है; और भिक्षुओं! क्षत्रिय-परिषद् अ-तृप्त ही रहती है, जब कि चक्रवर्ती राजा चुप होता है। [२] यदि ब्राह्मण-परिषद ०। [३[यदि गृहपति-परिषद ०। [४] यदि श्रमण-परिषद ०। इसी प्रकार भिक्षुओं! यह चार आश्चर्य, अद्भुत बातें आनन्द में है। [१[यदि भिक्षु-परिषद ०।०। भिक्षुओं! यह चार आश्चर्य अद्भुत बातें आनन्द में हैं।"

(२०५) एवं वुत्ते आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"मा भन्ते, भगवा इमस्मिं खुद्दक-नगरके उज्जङ्गल-नगरके साख-नगरके परिनिब्बायि ! सन्ति भन्ते, अञ्ञानि महानगरानि, सेय्यथीदं—चम्पा, राजगहं, सावत्थी, साकेतं, कोसम्बी, वाराणसी; एत्थ भगवा परिनिब्बातु ! एत्थ बहू खत्तिय-महासाला ब्राह्मणमहासाला गहपतिमहासाला तथागते अभिप्पसन्ना । ते तथागतस्स सरीरेपूजं करिस्सन्ती' ति ।

(२०६) मा हेवं आनन्द, अवच, मा हेवं आनन्द, अवच, 'खुद्दक नगरकं, उज्जङ्गल नगरकं, साख नगरकन्ति'। भूतपुब्बं आनन्द, राजा महासुदस्सनो नाम अहोसि चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनप्पदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो। रञ्ञो आनन्द, महासुदस्सनस्स अयं कुसिनारा कुसावती नाम राजधानी अहोसि। पुरत्थिमेन च पच्छिमेन च द्वादस योजनानि आयामेन । उत्तरेन च दक्खिणेन

(२०५) आयुष्मान् आनन्द ने भगवान से यह कहा—"भन्ते ! मत इस क्षुद्र नगले (=नगरक) में, जंगली नगले में शाखा-नगरक में परिनिर्वाण को प्राप्त होवें । भन्ते ! और भी महानगर हैं, जैसे कि चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी । वहाँ भगवान परिनिर्वाण करें। वहाँ बहुत से क्षत्रीय महाशाल (=महा-धनी), ब्राह्मण-महाशाल, गृहपति महाशाल तथागत के भक्त हैं ; वह तथागत के शरीर की पूजा करेंगे ।"

महासुदर्शनजातक*

(२०६) "मत आनन्द ! ऐसा कह ; मत आनन्द ! ऐसा कह !—इस क्षुद्र नगले० ।' आनन्द ! पूर्वकाल में महासुदर्शन नामक चारों दिशाओं का विजेता, देशों पर अधिकार प्राप्त, सात रत्नों से युक्त धार्मिक धर्म राजा चक्रवर्ती राजा था । आनन्द ! यह कुसीनारा राज महासुदर्शन की कुशावती

---

*देखो महासुदस्सन-सुत्त पृ० १५२ दीघनिकाय ।

च सत्त योजनानि वित्थारेन। कुसावती आनन्द, राजधानी इद्धा चेव अहोसि फीता च बहुजना च आकिण्णमनुस्सा च सुभिक्खवा च। सेय्यथापि,—आनन्द, देवानं आलकमन्दा नाम राजधानी इद्धा चेव होति फीता च बहुजना च आकिण्णयक्खा च सुभिक्खा च, एवमेव खो आनन्द, कुसावती राजधानी इद्धा चेव अहोसि फीता च बहुजना च आकिण्णमनुस्सा च सुभिक्खा च। कुसावती आनन्द, राजधानी दसहि सद्देहि अविवित्ता अहोसि दिवा चेव रत्तिं च। सेय्यथीदं—हत्थिसद्देन, अस्ससद्देन रथसद्देन, भेरिसद्देन, मुदिङ्गसद्देन, वीणासद्देन, गीतसद्देन, सङ्खसद्देन, सम्मपाणि-सद्देन, तालसद्देन, अस्नाथ पिवथ खादथा' ति दसमेन सद्देन।

(२०७) गच्छ त्वं आनन्द, कुसिनारायं पविसित्वा कोसिनारकानं मल्लानं आरोचेहि—"अज्ज खो वासिट्ठा, रत्तिया पच्छिमे यामे तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। अभिक्खमथ वासिट्ठा, अभिक्खमथ वासिट्ठा! मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थं, अम्हाकं च नो गामखेत्ते

नामक राजधानी थी। जो कि पूर्व-पश्चिम लम्बाई में बारह योजन थी, उत्तर-दक्षिण विस्तार में सात योजन थी। आनन्द! कुशावती राजधानी समृद्ध=स्फीत, बहुजना=जनाकीर्ण और सुभिक्ष थी। जैसे कि आनन्द! देवताओं की आलकमंदा नामक राजधानी समृद्ध=स्फीत, बहुजन=यक्ष-आकीर्ण और सुभिक्ष हैं; इसी प्रकार ०। आनन्द! कुशावती राजधानी दिन-रात, हस्ति-शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरी-शब्द, मृदंग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, शंख शब्द, ताल-शब्द 'खाइये-पीजिये'—इन दस शब्दों से शून्य न होती थी।

(२०७) आनन्द! कुसीनारा में जाकर कुसीनारावासी मल्लों को कह—'वाशिष्टो! आज रात के पिछले पहर तथागत का परिनिर्वाण होगा। चलो वाशिष्टो! चलो वाशिष्टो! पीछे अफसोस मत करना—'हमारे

तथागतस्स परिनिब्बानं अहोसि, न मयं लभिम्हा पच्छिमे काले तथागतं दस्सनाया' ति"।

(२०८) 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा निवासेत्वा पत्तंचीवरमादाय अत्तदुतियो कुसिनारं पाविसि। तेन खो पन समयेन कोसिनारका मल्ला सन्थागारे। सन्निपतिता होन्ति केनचि-देव करणीयेन। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन कोसिनारकानं मल्लानं सन्थागारं तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा कोसिनारकानं मल्लानं आरोचेसि— "अज्ज खो वासिट्ठा, रत्तिया पच्छिमे यामे तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। अभिक्खमथ वासिट्ठा, अभिक्खमथ वासिट्ठा! मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ! अम्हाकं च नो गामक्खेत्ते तथागतस्स परिनिब्बानं अहोसि, न मयं लभिम्हा पच्छिमे काले तथागतं दस्सनाया' ति"॥

(२०९) इदमायस्मतो आनन्दस्स सुत्वा मल्ला च मल्लपुत्ता च मल्ल-सुणिसा च मल्लपजापतियो च अघाविनो दुम्मना चेतो दुक्खसमप्पिता

ग्राम-क्षेत्र में तथागत का परिनिर्वाण हुआ, लेकिन हम अन्तिम काल में तथागत का दर्शन न कर पाये।"

(२०८) "अच्छा भन्ते!" आयुष्मान आनन्द चीवर पहिन कर, पात्र चीवर ले, अकेले ही कुसीनारा में प्रविष्ट हुए। उस समय कुसीनारा वासी मल्ल किसी काम से संस्थागार में जमा हुए थे। तब आयुष्मान आनन्द जहाँ कुसीनारा के मल्लों का संस्थागार था, वहाँ गये। जाकर कुसीनारावासी मल्लों से यह बोले—'वाशिष्टो! ०।'

(२०९) आयुष्मान आनन्द से यह सुन कर मल्ल, मल्ल-पुत्र, मल्ल-वधुये, मल्ल-भार्यायें दुःखित दुर्मना दुःख-समर्पित-चित्त हो, कोई कोई

---

*'सन्थागारे' भी पाठ है।

अप्पेकच्चे केसे पकिरिय कन्दन्ति ; बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति ; छिन्नपातं पपतन्ति ; आवट्टन्ति विवट्टन्ति —'अतिखिप्पं भगवा परिनिब्बायिस्सति। अतिखिप्पं सुगतो परिनिब्बायिस्सति। अतिखिप्पं चक्खुमा लोके अन्तरधायिस्सती ! ति"।

अथ खो मल्ला च मल्लपुत्ता च मल्लसुणिसा च मल्लपजापतियो च अघाविनो दुम्मना चेतो दुक्खसमप्पिता, येन उपवत्तनं मल्लानं सालवनं येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमिंसु।

(२१०) अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—'सचे खो अहं कोसिनारके मल्ले एकमेकं भगवन्तं वन्दापेस्सामि। अवन्दितो भगवा कोसिनारकेहि मल्लेहि भविस्सति। अतायं रत्ति विभायिस्सति। यं नूनाहं कोसिनारके मल्ले कुलपरिवत्तसो कुलपरिवत्तसो ठपेत्वा भगवन्तं वन्दापेय्यं।

बालों को बिखेर रोते थे, बाँह पकड़कर क्रंदन करते थे, कटे (वृक्ष) से गिरते थे, (भूमि पर) लौटते थे—बहुत जल्दी भगवान निर्वाण प्राप्त हो रहे हैं, बहुत जल्दी सुगत निर्वाण प्राप्त हो रहे हैं ०। बहुत जल्दी लोकचक्षु अन्तर्धान हो रहे हैं। तब मल्ल ० दुःखित ० हो, जहाँ उपवत्तन मल्लों का शालवन था, वहाँ गये।

(२१०) तब आयुष्मान् आनन्द को यह हुआ—'यदि मैं कुसीनारा के मल्लों को एक एक कर भगवान् की वन्दना करवाऊँ; तो भगवान् (सभी) कुसीनारा के मल्लों से अवन्दित ही होंगे, और यह रात बीत जायेगी। क्यों न मैं कुसीनारा के मल्लों को एक एक कुल के क्रम से भगवान् की वन्दना करवाऊँ—

(२११) 'इत्थनामो भन्ते, मल्लो सपुत्तो सभरियो सपरिसो सामच्चो भगवतो पादे सिरसा वन्दती ति'।

(२१२) अथ खो आयस्मा आनन्दो कोसिनारके मल्ले कुलपरिवत्तसो कुलपरिवत्तसो ठपेत्वा भगवन्तं वन्दापेसि। "इत्थन्नामो भन्ते, मल्लो सपुत्तो सभरियो सपरिसो सामच्चो भगवतो पादे सिरसा वन्दती ति"।

अथ खो आयस्मा आनन्दो एतेन उपायेन पठमेनेव यामेन कोसिनारके मल्ले भगवन्तं वन्दापेसि।

(२१३) तेन खो पन समयेन सुभद्दो नाम परिब्बाजको कुसिनारायं पटिवसति। अस्सोसि खो सुभद्दो परिब्बाजको 'अज्ज किर रत्तिया पच्छिमे यामे समणस्स गोतमस्स परिनिब्बानं भविस्सती ति। अथ खो सुभद्दस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि 'सुतं खो पन मे तं परिब्बाजकानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—कदाचि करहचि

(२११) 'भन्ते! अमुक नामक मल्ल स-पुत्र, स-भार्य स-परिषद् स-अमात्य भगवान् के चरणों को शिर से वन्दना करता है।'

(२१२) तब आयुष्मान् आनन्द ने कुसीनारा के मल्लों को एक एक कुल के क्रम से भगवान् की वन्दना करवाई—०। इस उपाय से आयुष्मान् आनन्द ने प्रथम याम (=छै से दस बजे रात तक) में कुसीनारा के मल्लों से भगवान् की वन्दना करवा दी।

सुभद्र की प्रव्रज्या

(२१३) उस समय कुसीनारा में सुभद्र नामक परिव्राजक वास करता था। सुभद्र परिव्राजक ने सुना, आज को पिछले पहर श्रमण गोतम का परिनिर्वाण होगा। तब सुभद्र परिव्राजक को ऐसा हुआ—'मैंने बृद्ध=महल्लक आचार्य-प्राचार्य परिव्राजकों को यह कहते सुना है—

तथागता लोके उप्पज्जन्ति अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा। अज्जेव रत्तिया पच्छिमे यामे समणस्स गोतमस्स परिनिब्बानं भविस्सति। अत्थि च मे अयं कङ्खाधम्मो उप्पन्नो। एवं पसन्नो अहं समणे गोतमे। पहोति मे समणो गोतमो तथा धम्मं देसेतं, यथाहं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यन्ति"।

(२१४) अथ खो सुभद्दो परिब्बाजको येन उपवत्तनं मल्लानं सालवनं, येनायस्मा आनन्दो, तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतदबोच—"सुतं मे तं भो आनन्द, परिब्बाजकानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं,—कदाचि करहचि तथागता लोके उप्पज्जन्ति अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा। अज्जेव रत्तिया पच्छिमे यामे समणस्स गोतमस्स परिनिब्बानं भविस्सति। अत्थि च मे अयं कङ्खधम्मो उप्पन्नो। एवं पसन्नो अहं समणे गोतमे तथा धम्मं देसेतुं, यथाहं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यं ति। साधाहं भो आनन्द ! लभेय्यं समणं गोतमं दस्सनाया, ति"॥

(२१५) एवं वुत्ते आयस्मा आनन्दो सुभद्दं परिब्बाजकं एतदबोच—"अलं आवुसो सुभद्द, मा तथागतं विहेठेसि। किलन्तो भगवा ति"॥

'कदाचित् कभी ही तथागत अर्हत सम्यक्-सम्बुद्ध उत्पन्न हुआ करते है।' और आज के पिछले पहर श्रमणा गौतम का परिनिर्वाण होगा, और मुझे यह संशय (=कंखा-धम्म) उत्पन्न है;...इस प्रकार मैं श्रमण गौतम में प्रशन्न (=श्रद्धावान) हूं—श्रमण गौतम मुझे वैसा, धर्म उपदेश कर सकता है; जिससे मेरा यह सशय हट जायेगा।"

(२१४) तब सुभद्र परिव्राजक जहाँ मल्लों का शाल-वन उपवत्तन था, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्द से बोला—"हे आनन्द ! मैंने बृद्ध=महल्लक ० परिव्राजकों को यह कहते सुना है। सो मैं...श्रमण गौतम का दर्शन पाऊँ ?"

दुतियम्पि खो सुभद्दो परिब्बाजको०। ततियम्पि खो सुभद्दो परिब्बाजको आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच "सुतं मे तं भो आनन्द, परिब्बाजकानं वुद्धानं महल्लकानं आचरिय-पाचरियानं भासमानानं,—'कदाचि करहचि तथागता लोके उप्पज्जन्ति अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा'। अज्जेव रत्तिया पच्छिमे यामे समणस्स गोतमस्स परिनिब्बानं भविस्सति। अत्थि च मे अयं कङ्खाधम्मो उप्पन्नो। एवं पसन्नो अहं समणे गोतमे पहोति मे समणो गोतमो तथा धम्मं देसेतुं यथाहं इमं कङ्खाधम्मं पजहेय्यं ति। साधाहं भो आनन्द! लभेय्यं समणं गोतमं दस्सनाया, ति"। ततियम्पि खो आयस्मा आनन्दो सुभद्दं परिब्बाजकं एतदवोच—"अलं आवुसो सुभद्द! मा तथागतं विहेठेसि। किलन्तो भगवा, ति॥"

(२१६) अस्सोसि खो भगवा आयस्मतो आनन्दस्स सुभद्देन परिब्बाजकेन सद्धिं इमं कथासल्लापं। अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"अलं आनन्द, मा सुभद्दं वारेसि। लभतं आनन्द, सुभद्दो तथागतं दस्सनाय। यं किञ्चि मं सुभद्दो पुच्छिस्सति, सब्बन्तं अञ्ञापेक्खोव

(२१५) ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द ने सुभद्र परिव्राजक से कहा—

"नहीं आवुस सुभद्र! तथागत को तकलीफ मत दो। भगवान थके हुये हैं।"

दूसरी बार भी सुभद्र परिव्राजक ने ०।०। तीसरी बार भी ०।०।

(२१६) भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द का सुभद्र परिव्राजक के साथ का कथा संलाप सुन लिया। तब भगवान् ने आयुष्यान् आनन्द से कहा—

"नहीं आनन्द! मत सुभद्र को मना करो। सुभद्र को तथागत का का दर्शन पाने दो जो कुछ सुभद्र पूछेगा, वह आज्ञा (=परम-ज्ञान) की

पुच्छिस्सति, नो विहेसापेखो। यञ्चस्साहं पुट्ठो ब्याकरिस्सामि, तं खिप्पमेव आजानिस्सती, ति" ॥

(२१७) अथ खो आयस्मा आनन्दो सुभद्दं परिब्बाजकं एतदवोच—"गच्छावुसो सुभद्द, करोति ते भगवा ओकासंति" ॥

(२१८) अथ खो सुभद्दो परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सुभद्दो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—

(२१९) "ये मे भो गोतम ! समण ब्राह्मण सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया ञाता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स, सेय्यथिदं—पूरणो कस्सपो, मक्खलि गोसालो, अजितो केसकम्बलो, पकुधो कच्चायनो, सञ्जयो बेलट्ठपुत्तो, निगण्ठो नाटपुत्तो, सब्बे ते सकाय पटिञ्ञाय अब्भञ्ञिंसु।

इच्छा से ही पूछेगा; तकलीफ देने की इच्छा से नहीं। पूछने पर जो मैं उसे कहूंगा, उसे वह जल्दी ही जान लेगा।"

(२१७) तब आयुष्मान् आनन्द ने सुभद्र परिब्राजक से कहा—

"जाओ आवुस सुभद्र ! भगवान् तुम्हें आज्ञा देते हैं।"

(२१८) तब सुभद्र परिब्राजक जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान् के साथ संमोदन कर...एक ओर बैठा। एक ओर बैठ...बोला।

(२१९) "हे गौतम ! जो श्रमण ब्राह्मण संघी गणी=गणाचार्य प्रसिद्ध यशस्वी तीर्थंकर, बहुत लोगों द्वारा उत्तम माने जाने वाले हैं; जैसे कि—पूर्ण काश्यप, मक्खलि गोसाल, अजित केश कम्बल, पकुध कच्चायन, संजय बेलट्ठिपुत्त, निगण्ठ नाथपुत्त। (क्या) वह सभी अपने

सब्बेव न अब्भञ्ञिंसु । उदाहु एकच्चे अब्भञ्ञिंसु । एकच्चे न अब्भञ्ञिंसू, ति" ।

(२२०) अलं सुभद्द, तिट्ठते तं । सब्बे ते सकाय पटिञ्ञाय अब्भञ्ञिंसु । सब्बेव अब्भञ्ञिंसु । उदाहु एकच्चे अब्भञ्ञिंसु । एकच्चे न अब्भञ्ञिंसू, ति ।। धम्मं ते सुभद्द, देसिस्सामि । तं सुणाहि साधुकं मनसि करोहि, भासिस्सामी ति ।।

(२२१) 'एवं भन्ते' ति खो सुभद्दो परिब्बाजको भगवतो पच्चस्सोसि ।

भगवा एतदवोच—"यस्मि खो सुभद्द ! धम्मविनये अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो न उपलब्भति, समणो पि तत्थ न उपलब्भति । दुतियो पि तत्थ समणो न उपलब्भति । ततियो पि तत्थ समणो न उपलब्भति । चतुत्थो पि तत्थ

दावा (=प्रतिज्ञा) को (वैसा) जानते, (या) सभी (वैसा) नहीं जानते; (या) कोई कोई वैसा जानते, कोई कोई वैसा नहीं जानते हैं ;..."

(२२०) "नहीं सुभद्र ! जाने दो—'वह सभी अपने दावा को ०। सुभद्र तुम्हें धर्म ० उपदेश करता हूं उसे सुनो, अच्छी तरह से मन में करो, भाषण करता हूं।"

(२२१) "अच्छा भन्ते ! सुभद्र परिब्राजक ने भगवान् से कहा। भगवान ने यह कहा—

"सुभद्र ! जिस धर्म-विनय में आर्य अष्टांगिक मार्ग उपलब्ध नहीं होता, वहाँ प्रथम श्रमण (=स्रोत आपन्न) भी उपलब्ध नहीं होता; द्वितीय

---

*अ. क. "पहिले पहर में मल्लों को धर्म देशनाकर, बिचले पहर सुभद्र को, पिछले पहर भिक्षु-संघ को उपदेश कर, बहुत भोरे ही परिनिर्वाण...

समणो न उपलब्भति। यस्मिं च खो सुभद्द, ! धम्मविनये अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो उपलब्भति समणो पि तत्थ उपलब्भति। दुतियो पि तत्थ समणो उपलब्भति। ततियो पि तत्थ समणो उपलब्भति। चतुत्थो पि तत्थ समणो उपलब्भति। इमस्मि खो सुभद्द! धम्मविनये अरिये अट्ठङ्गिको मग्गो उपलब्भति, इधेव, सुभद्द, समणो। इध दुतियो समणो। इध ततियो समणो। इध चतुत्थो समणो। सञ्ञापरप्पवादा समणेहि अञ्ञेहि। इधेव सुभद्द, भिक्खू सम्मा विहरेय्युं, असुञ्ञो लोके अरहन्ते हि अस्साति।

एकूनतिंसो वयसा सुभद्द,
यं पब्बजिं किंकुसलानुएसी।
वस्सानि पञ्ञास समधिकानि,
यतो अहं पब्बजितो सुभद्द।
ञायस्स धम्मस्स पदेसवत्ती,
इतो बहिद्धा समणो नत्थि।

दुतियो पि समणो नत्थि। ततियो पि समणो नत्थि। चतुत्थो पि

श्रमण (=सकृदागामी) भी उपलब्ध नहीं होता; तृतीय श्रमण (=अनागामी) भी उपलब्ध नहीं होता; चतुर्थ श्रमण (अर्हत) भी उपलब्ध नहीं होता। सुभद्र! जिस धर्म-विनय मे आर्य-अष्टांगिक-मार्ग उपलब्ध होता है, प्रथम श्रमण भी वहाँ होता है ०। सुभद्र! इस धर्म-विनय में आर्य अष्टांगिक-मार्ग उपलब्ध होता है; यहाँ प्रथम श्रमण ० भी यहाँ द्वितीय श्रमण भी, यहाँ ० तृतीय श्रमण भी, यहाँ ० चतुर्थ श्रमण भी है। दूसरे बाद (=मत) श्रमणों से शून्य हैं। सुभद्र! यहाँ (यदि) भिक्षु ठीक से विहार करें (तो) लोक अर्हतों से शून्य न होवे।"

"सुभद्र! उन्तीस वर्ष की अवस्था में कुसल (=पुण्यधर्म) का खोजी हो, जो मैं प्रव्रजित हुआ।

समणो नत्थि सुञ्ञा परप्पवादा समणेहि अञ्ञेहि। इमे च सुभद्द, सम्मा भिक्खू विहरेय्युं असुञ्ञो लोको अरहन्तेहि अस्स" ति।

(२२२) एवं वुत्ते सुभद्दो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच। "अभिक्कन्तं भन्ते, अभिक्कन्तं भन्ते, सेय्यथापि भन्ते! निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळहस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य चक्खुमन्तो रूपानि दक्खिन्ती, ति, एवमेवं भगवता अनेक परियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भन्ते' भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मञ्च भिक्खुसंघञ्च। लभेय्याहं भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं। लभेय्यं उपसम्पदन्ति"॥

(२२३) "यो खो सुभद्द, अञ्ञातित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खति पब्बज्जं आकङ्खति उपसम्पदं, सो चत्तारो मासे परिवसति। चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय। अपि च मेत्थ पुग्गलविमत्तता विदिता" ति।

सुभद्र! जब मै प्रव्रजित हुआ तब से इक्यावन वर्ष हुए।

न्याय-धर्म (= आर्य-धर्म = सत्यधर्म) के एक देश को भी देखने वाला यहाँ से बाहर कोई नहीं है।

(२२२) ऐसा कहने पर सुभद्र परिव्राजक ने भगवान् से कहा—

"आश्चर्य भन्ते! अद्‌भुत भन्ते! ० मैं भगवान् की शरण जाता हूं, धर्म और भिक्षु-संघ की भी। भन्ते! मुझे भगवान् के पास से प्रव्रज्या मिले, उपसंपदा मिले।"

(२२३) "सुभद्र! जो कोई भूतपूर्व अन्य-तीर्थिक (= दूसरे पंथ का) इस धर्म... में प्रव्रज्या... उपसंपदा चाहता है वह चार मास परिवास (= परीक्षार्थ वास) करता हैं। चार मास के बाद, आरब्ध-चित्त भिक्षु प्रव्रजित करते हैं, भिक्षु होने के लिये उपसंपन्न करते है।"...

(२२४) "सचे भन्ते ! अञ्ञातित्थियपुब्बा इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खन्ता पब्बज्जं आकङ्खन्ता उपसम्पदं चत्तारो मासे परिवसन्ति । चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय । अहं चत्तारि वस्सानि परिवसिस्सामि । चतुन्नं वस्सानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्तु उपसम्पादेन्तु भिक्खुभावाया ति ॥

(२२५) अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि ।

"तेनहानन्द, सुभद्दं पब्बाजेही" ति ॥

"एवं भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ॥

(२२६) अथ खो सुभद्दो परिवाजको आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"लाभा वो, आवुसो आनन्द, सुलद्धं वो, आवुसो आनन्द, ये एत्थ सत्थुसंमुखा अन्तेवासिकाभिसेकेन अभिसित्ता ति ॥

(२२७) अलत्थ खो सुभद्दो परिबाजको भगवतो सन्तिके पब्बज्जं,

(२२४) "भन्ते यदि भूतपूर्व अन्यतीर्थिक इस धर्म विनय में प्रव्रज्या ० उपसंपदा चाहने पर, चार मास परिवास करता है ०, तो भन्ते ! मैं चार वर्ष परिवास करूँगा । चार वर्षों के बाद आरब्ध-चित्त भिक्षु मुझे प्रव्रजित करें ।"

(२२५) तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—'तो आनन्द ! सुभद्र को प्रव्रजित करो ।" "अच्छा भन्ते ।"

(२२६) तब सुभद्र परिव्राजक को आयुष्मान् आनन्द ने कहा—

"आवुस !...लाभ है तुम्हें, सूलाभ हुआ तुम्हें; जो यहाँ शास्ता के सम्मुख अन्तेवासी (= शिष्य) के अभिषेक से अभिषिक्त हुए ।"

(२२७) सुभद्र हरिव्राजक ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई, उपसंपदा

अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो खो पनायस्मा सुभद्दो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो न चिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। "खीणा जाति। वुसितं ब्रह्मचरियं। कतं करणीयं। नापरं इत्थत्तायाति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो खो पनायस्मा सुभद्दो अरहतं अहोसि। सो भगवतो पच्छिमो सक्खिसावको अहोसी ति।

भाणवारं पञ्चमं ॥ ५ ॥

(२२८) अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"सिया खो पनानन्द, तुम्हाकं [१] एवमस्स 'अतीत सत्थुकं पावचनं नत्थि नो सत्था' ति। न खो पनेतं आनन्द, एवं दट्ठब्बं। यो वो आनन्द, मया धम्मो च विनयो देसितो पञ्ञत्तो, सो वो ममच्चयेन सत्था ति। [२] यथा खो पनानन्द, एतरहि

पाई। उपसंपन्न होने के अचिर ही में आयुष्मान् सुभद्र...आत्मसंयमी हो विहार करते, जल्दी ही, जिसके लिये कुलपुत्र ० प्रव्रजित होते हैं; उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य फल को इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात्कार, प्राप्त कर विहरने लगे। ०। सुभद्र अर्हतों में से एक हुए। वह भगवान् के अन्तिम ...शिष्य हुए।

(इति) पंचम भाणवार ॥ ५ ॥

अन्तिम उपदेश

(२२९) तब भगवान् ने आनन्द से कहा—

"आनन्द! शायद तुमको ऐसा हो—[१] अतीत-शास्ता (=चले गये गुरु) का (यह) प्रवचन (=उपदेश) है, (अब) हमारा शास्ता नहीं है। आनन्द! इसे ऐसा मत समझना। मैंने जो धर्म और विनय उपदेश किये

भिक्खू अञ्ञमञ्ञं 'आवुसोवादेन समुदाचरन्ति। न खो ममच्चयेन एवं समुदाचरितब्बं। थेरतरेन आनन्द, भिक्खुना नवकतरो भिक्खु नामेन वा गोत्तेन वा आवुसोवादेन वा समुदाचरितब्बो। नवकतरेन भिक्खुना थेरतरो भिक्खु 'भन्ते' ति वा 'आयस्मा' ति वा समुदाचरितब्बो। [३]—आकङ्खमानो आनन्द, संघो ममच्चयेन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि समुहनतु। [४]—छन्नस्स आनन्द, भिक्खुनो ममच्चयेन ब्रह्मदण्डो दातब्बो ति"।

(२२९) "कतमो पन भन्ते, ब्रह्मदण्डो" ति ?

(२३०) "छन्नो आनन्द, भिक्खु यं इच्छेय्य तं वदेय्य, सो भिक्खूहि नेव वत्तब्बो, न ओवदितब्बो, न अनुसासितब्बो" ति।

हैं, प्रज्ञप्त (=विहित) किये हैं; मेरे बाद वही तुम्हारा शास्ता (=गुरु) है।—[२] आनन्द! जैसे आजकल भिक्षु एक दूसरे को 'आवुस' कहकर पुकारते हैं, मेरे बाद ऐसा कहकर न पुकारें। आनन्द! स्थविरतर (=उपसंपदा प्रव्रज्या में अधिक दिन का) भिक्षु नवक-तर (=अपने से कम समय के) भिक्षु को नाम से, या गोत्र से, या आवुस, कहकर पुकारें। नवकतर भिक्षु स्थविरतर को 'भन्ते' या 'आयुष्मान्' कहकर पुकारें। [३] इच्छा होने पर संघ मेरे बाद क्षुद्र-अनुक्षुद्र (=छोटे छोटे) शिक्षापदों (=भिक्षु नियमों) को छोड़ दे। [४] आनन्द! मेरे बाद छन्न भिक्षु को ब्रह्मदण्ड करना चाहिये।"

(२२९) "भन्ते! ब्रह्मदण्ड क्या है?"

(२३०) "आनन्द! छन्न भिक्षुओं को जो चाहे सो कहे, भिक्षुओं को उससे न बोलना चाहिये, न उपदेश = अनुशासन करना चाहिए।"

(२३१) अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"सिया खो पन भिक्खवे, एकभिक्खुस्सापि कङ्खा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा संघे वा मग्गे वा पटिपदाय वा, पुच्छथ, भिक्खवे, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ-'संमुखीभूतो नो सत्था अहोसि। न मयं सक्खिम्हा भगवन्तं संमुखा पटिपुच्छितुंति।

(२३२) एवं वुत्ते ते भिक्खू तुण्हीअहेसुं। दुतियम्पि खो भगवा। ततियम्पि खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"सिया खो पन भिक्खवे, एकभिक्खुस्सापि कङ्खा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा संघे वा मग्गे वा पटिपदाय वा। पुच्छथ, भिक्खवे, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ संमुखीभूतो नो सत्था अहोसि; न मयं सक्खिम्हा भगवन्तं संमुखा पटिपुच्छितुन्ति"। ततियम्पि खो ते भिक्खू तुण्हीअहेसुं। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"सिया खो पन भिक्खवे, सत्थुगारवेनापि न पुच्छेय्याथ, सहायको पि भिक्खवे, सहायकस्स आरोचेतू ति।"

एवं वुत्ते ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं।

(२३३) अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"अच्छरियं

(२३१) तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—"भिक्षुओं! (यदि) बुद्ध, धर्म, संघ में एक भिक्षु को भी कुछ शंका हो, (तो) पूछ लो। भिक्षुओं पीछे अफसोस मत करना—'शास्ता हमारे सन्मुख थे, (किन्तु) हम भगवान् के सामने कुछ पूछ न सकें।"

(२३२) ऐसा कहने पर वह भिक्षु चुप रहे। दूसरी बार भी भगवान् ने ०।०। तीसरी बार भी ०।०।

(२३३) तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह कहा"—आश्चर्य

भन्ते, अब्भुतं भन्ते, एवं पसन्नो अहं भन्ते, इमस्मिं भिक्खुसंघे, नत्थि एकभिक्खुस्सा पि कङ्खा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा संघे वा मग्गे वा पटिपदाय वा ति।"

(२३४) "पसादा खो त्वं आनन्द, वदेसि; ञाणमेव हेत्थ आनन्द, तथागतस्स। नत्थि इमस्मिं भिक्खुसंघे एकभिक्खुस्सापि कङ्खा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा संघे वा मग्गे वा पटिपदाय वा। इमेसं हि आनन्द, पञ्चन्नं भिक्खुसतानं यो पच्छिमको भिक्खु सो सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो" ति।

(२३५) अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"हन्द दानि भिक्खवे, आमन्तयामि वो, वयधम्मा सङ्खारा, अप्पमादेन सम्पादेथा" ति।

अयं तथागतस्स पच्छिमा वाचा।

भन्ते! अद्भुत भन्ते!! मैं भन्ते! इस भिक्षु-संघ में इतना प्रसन्न हूं। (यहाँ) एक भिक्षु को भी बुद्ध, धर्म, संघ, मार्ग या प्रतिपद् के विषय में संदेह (=कांक्षा)=विमति नहीं है।"

(२३४) "आनन्द! 'प्रसन्न हूं' कह रहा है? आनन्द! तथागत को मालूम है—इस भिक्षु-संघ में एक भिक्षु को भी बुद्ध० के विषय में संदेह =विमति नहीं है। आनन्द! इन पाँच सौ भिक्षुओं में जो सबसे छोटा भिक्षु है। वह भी न गिरनेवाला हो, नियत संबोधि-परायण है।"

(२३५) तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—"हन्त! भिक्षुओ अब तुम्हें कहता हूं—"संस्कार (=कृतवस्तु) व्यय-धर्मा (=नाशमान्) हैं; अप्रमाद के साथ (=आलस न कर) (जीवन के लक्ष्य को) संपादन करो।"—यह तथागत का अन्तिम वचन है।"

(२३६) अथ खो भगवा पठमं झानं समापज्जि। पठमज्झाना वुट्ठहित्वा दुतियं झानं समापज्जि। दुतियज्झाना वुट्ठहित्वा ततियं झानं समापज्जि। ततियज्झाना वुट्ठहित्वा चतुत्थं झानं समापज्जि। चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्वा अकासानञ्चायतनं समापज्जि। आकासाञ्चायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा विञ्ञाणञ्चायतनं समापज्जि। विञ्ञाञ्चाणयतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जि। आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समापज्जि। नेवसञ्ञानासञ्ञायतन-समापत्तिया वुट्ठहित्वा सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जि।

(२३७) अथ खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं अनुरुद्धं एतदवोच—"परिनिब्बुतो भन्ते अनुरुद्ध! भगवा" ति।

(२३८) "नावुसो आनन्द, भगवा परिनिब्बुतो, सञ्ञावेदयितनिरोधं समापन्नो" ति।

निर्वाण

(२३६) तब भगवान प्रथम ध्यान को प्राप्त हुऐ। प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान को प्राप्त हुए। ० तृतीय ध्यान को ०। ० चतुर्थ ध्यान को ० आकाशनन्त्यायतन को ०। ० विज्ञानानन्त्यायतन को ०। ० आकिंचन्यायतन को ०। ० नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को ०। ० संज्ञावेदयित निरोध को प्राप्त हुए।

(२३७) तब आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान अनुरुद्ध से कहा—"भन्ते अनुरुद्ध! क्या भगवान परिनिर्वृत हो गये?"

(२३८) "आवुस आनन्द! भगवान परिनिर्वृत्त नहीं हुए। संज्ञा-वेदयित निरोध को प्राप्त हुए हैं।"

(२३९) अथखो भगवा सञ्ञावेदयितनिरोध-समापत्तिया वुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समापज्जि। नेवसञ्ञानायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जि। आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा विञ्ञाणञ्चायतनं समापज्जि। विञ्ञाणञ्चायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा आकासानञ्चायतनं समापज्जि। आकासानञ्चायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा चतुत्थं झानं समापज्जि। चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्वा ततियंझानं समापज्जि। ततियज्झाना वुट्ठहित्वा दुतियंज्झानं समापज्जि। दुतियज्झाना वुट्ठहित्वा पठमं झानं समापज्जि। पठमज्झाना वुट्ठहित्वा दुतियं झानं समापज्जि। दुतियंज्झाना वुट्ठहित्वा ततियं झानं समापज्जि। ततियज्झाना वुट्ठहित्वा चतुत्थं झानं समापज्जि। चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्या समनन्तरा भगवा परिनिब्बायि। परिनिब्बुते भगवति सहपरिनिब्बाना महाभूमिचालो अहोसि; भिंसनको सलोमहंसो; देवदुन्दुभियो च फलिंसु। परिनिब्बुते भगवति सह परिनिब्बाना ब्रह्मा सहंपति इमं गाथं अभासि—

(२४०) "सब्बेव निक्खिपिस्सन्ति भूता लोके समुस्सयं।
यत्थ एतादिसो सत्था लोके अप्पटिपुग्गलो।

(२३९) तब भगवान संज्ञावेदयितनिरोध-समापत्ति (=चारों ध्यानों के ऊपर की समाधि) से उठकर नैवसंज्ञा-नासंज्ञातन को प्राप्त हुए। ०। द्वितीय ध्यान से उठकर प्रथम ध्यान को प्राप्त हुए। प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान को प्राप्त हुए। ०। चतुर्थ ध्यान से उठने के तनन्तर भगवान परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। भगवान के परिनिर्वाण होने पर, निर्वाण होने के साथ भीषण, लोमहर्षण महाभूचाल हुआ। देवदुन्दूभियाँ बजीं। भगवान के परिनिर्वाण होने पर निर्वाण होते के साथ सहाम्पति ब्रह्मा ने यह गाथा कही—

(२४०) "संसार के सभी प्राणी जीवन से गिरेगे।
जब कि ऐसे लोक में अद्वितीय पुरुष बल प्राप्त,

तथागतो बलप्पत्तो, सम्बुद्धो परिनिब्बुतो" ति ।।

(२४१) परिनिब्बुते भगवति सहपरिनिब्बाना सक्को देवानमिन्दो इमं गाथं अभासि—

"अनिच्चा वत सङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो ।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो" ति ।।

(२४२) परिनिब्बुते भगवति सहपरिनिब्बाना आयस्मा अनुरुद्धो इमा गाथायो अभासि—

"नाहु अस्सासपस्सासो ठितचित्तस्स तादिनो ।
अनेजो सन्तिमारब्भ यं कालमकरी मुनि ।।
असल्लीनेन चित्तेन वेदनं अज्झवासयि ।
पज्जोतस्सेव निब्बानं विमोक्खो चेतसो अहू ति ।।

तथागत, शास्ता बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए"

(२४१) भगवान् के परिनिर्वाण होने पर ० देवेन्द्र शक्र ने यह गाथा कही—

"अरे ! संस्कार (=उत्पन्न वस्तुएँ) उत्पन्न और नष्ट होने वाले हैं।
(जो) उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं; उनका शान्त होना ही सुख है"

(२४२) भगवान् के परिनिर्वाण होने पर ० आयुष्मान् अनुरुद्ध ने यह गाथा कही—

"स्थिर-चित्त तथागत को (अब) श्वास-प्रश्वास नहीं रहा ।
शान्ति के लिये निष्कम्प हो मुनि ने काल किया ।"

(२४२) परिनिब्बुते भगवति सहपरिनिब्बाना आयस्मा आनन्दो इमं गाथं अभासि—

"तदासि यं भिंसनकं, तदासि लोमहंसनं।
सब्बाकारवरूपेते सम्बुद्धे परिनिब्बुते" ति ॥

(२४४) परिनिब्बुते भगवति ये ते तत्थ भिक्खू अवीतरागा अप्पेकच्चे बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति, छिन्नपातं पपतन्ति, आवट्टन्ति विवट्टन्ति "अतिखिप्पं भगवा परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं सुगतो परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं चक्खुं लोके अन्तरहितो ति"। ये पन ते भिक्खू वीतरागा ते सता संपजाना अधिवासेन्ति। "अनिच्चा वत सङ्खारा तं कुतेत्थ लब्भा" ति।

(२४५) अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो भिक्खू आमन्तेसि—"अलं आवुसो, मा सोचित्थ, मा परिदेवित्थ। ननु एतं आवुसो, भगवता पटिगच्चेव अक्खातं सब्बेहेव पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो

(२४३) भगवान् के परिनिर्वाण होने पर ० आयुष्मान् आनन्द ने यह गाथा कही—

"जब सर्वश्रेष्ठ आकार से युक्त संबुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए,
"तो उस समय भीषणता हुई, उस समय रोमांच हुआ।"

(२४४) भगवान् के परिनिर्वाण हो जाने पर, जो वह अवीत-राग (=अ-विरागी) भिक्षु थे, (उनमें) कोई बाँह पकड़ कर क्रन्दन करते थे; कटे (वृक्ष) के सदृश गिरते थे, (धरती पर) लोटते थे—'भगवान् बहुत जल्दी परिनिर्वृत्त हो गये ०। किन्तु जो बीतराग भिक्षु थे, वह स्मृति-संप्रजन्य के साथ स्वीकार (=सहन) करते थे—'संस्कार अनित्य है, सो कहाँ मिलेगा ?"

(२४५) तब आयुष्मान् अनुरुद्ध ने भिक्षुओं से कहा—

अञ्ञथाभावो तं कुतेत्थ आवुसो, लब्भा। यं तं जातं भूतं सङ्खतं पलोकधम्मं तं वत मा पलुज्जीति नेतं ठानं विज्जति। देवता, आवुसो, उज्झायन्ती" ति।

(२४६) "कथंभूता पन भन्ते अनुरुद्ध, देवता मनसिकरोन्ती ति ?"

(२४७) "सन्तावुसो आनन्द, देवता आकासे पथवीसञ्ञिनियो केसे पकिरिय कन्दन्ति; बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति, छिन्नपातं पपतन्ति, आवट्टन्ति विवट्टन्ति—"अतिखिप्पं भगवा, परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं सुगतो परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं चक्खुं लोके अन्तरहितो ति।" सन्तावुसो आनन्द, देवता पथविया पथवीसञ्ञिनियो केसे पकरिय कन्दन्ति, बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति, छिन्नपातं पपन्ति, आवट्टन्ति विवट्टन्ति—अतिखिप्पं भगवा परिनिब्बुतो, अतिविप्पं सुगतो परिनिब्बुतो, अतिखप्पं चक्खुमा लोके अन्तरहितो ति।"

"नहीं आवुसो ! शोक मत करो, रोदन मत करो। भगवान् ने तो आवुसो ! यह पहले ही कह दिया है—'सभी प्रियों० से जुदाई० होनी है ०'।"

(२४६) "भन्ते अनुरुद्ध ! देवताओं के मन में कैसा है ?

(२४७) आवुस आनन्द ! देवता आकाश को पृथिवी ख्यालकर बाल खोले रो रहे हैं। हाथ पकड़ कर चिल्ला रहे हैं। कटे (वृक्ष)की भाँति भूमि पर गिर रहे हैं। (यह कहते) लोट पोट रहे हैं,—बहुत जल्दी भगवान् निर्वाण को प्राप्त हो रहे हैं। बहुत शीघ्र सुगत निर्वाण को प्राप्त हो रहे हैं। बहुत शीघ्र चक्षुमान (=बुद्ध) लोक से अन्तर्धान हो रहै हैं। ०। और जो देवता होश—चेत वाले हैं,—वह होश-चेत स्मृति संप्रजन्यों के साथ सह रहे हैं,—"संस्कृत (=कृत वस्तुएँ) अनित्य हैं। सो कहाँ मिल सकता है।"

या पन ता देवता वीतरागा ता सता संपजाना अधिवासेन्ति,—अनिच्चा सङ्खारा, तं कुतेत्थ लब्भा" ति ।

(२४८) अथ खो आयस्मा च अनुरुद्धो आयस्मा च आनन्दो तं रत्तावसेसं धम्मिया कथाय वीतिनामेसुं । अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"गच्छावुसो आनन्द, कुसिनारं, पविसित्वा कोसिनारकानं मल्लानं आरोचेहि—"परिनिब्बुतो वासेट्ठा, भगवा यस्स दानि कालं मञ्ञथा ति ।।"

(२४९) "एवं भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो आयस्मतो अनुरुद्धस्स पटिस्सुत्वा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय अत्तदुतियो कुसिनारं पाविसि । तेन खो पन समयेन कोसिनारका मल्ला संथागारे सन्निपतिता होन्ति तेनेव करणीयेन । अथ खो आयस्मा आनन्दो येन कोसिनारकानं मल्लानं सन्थागारं तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा कोसिनारकानं मल्लानं

(२४८) आयुष्मान अनुरुद्ध और आयुष्मान आनन्द ने वह बाकी रात धर्मकथा में बिताई । तब आयुष्मान अनुरुद्ध ने आयुष्मान आनन्द से कहा—

"जाओ ! आवुस आनन्द! कुसीनारा में जाकर, कुसीनारा के मल्लों से कहो—'वाशिष्ठो ! भगवान परिनिर्वृत्त हो गये । अब जिसका तुम काल समझो (वह करो) ।"

(२४९) "अच्छा भन्ते !" कह...आयुष्मान आनन्द पहिनकर पात्र-चीवर ले अकेले कुसीनारा में प्रविष्ट हुए । उस समय किसी काम से कुसीनारा के मल्ल, संस्थागार (=प्रजातन्त्र-सभा-भवन) में जमा थे । तब आयुष्मान आनन्द जहाँ मल्लों का संस्थागार था, वहाँ गये । जाकर कुसीनारा के मल्लों से बोले—

आरोचेसि—"परिनिब्बुतो वासेट्ठा, भगवा, यस्स दानि कालं मञ्ञथा" ति।

(२५०) इदमायस्मतो आनन्दस्स वचनं सुत्वा मल्ला च मल्लपुत्ता च मल्लसुणिसा च मल्लपजापतियो च अघाविनो दुम्मना चेतोदुक्खसमप्पिता अप्पेकच्चे केसे पकिरिय कन्दन्ति, बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति, छिन्नपातं पपतन्ति। आवट्टन्ति विवट्टन्ति—"अतिखिप्पं भगवा, परिनिब्बुतो, अति खिप्पं सुगतो परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं चक्खुमा लोके अन्तरहितो" ति।

(२५१) अथ खो कोसिनारका मल्ला पुरिसे आणापेसुं—"तेन हि भणे, कुसिनारायं गन्धमालं सब्बञ्च तालावचरं सन्निपातेथा" ति।

(२५२) अथ खो कोसिनारका मल्ला गन्धमालं च सब्बञ्च तालावचरं पञ्च च दुस्सयुगसतानि आदाय येन उपवत्तनं मल्लानं सालवनं,

"वाशिष्टो ! भगवान परिनिर्वृत हो गये, अब जिसका तुम काल समझो (वैसा करो)।"

(२५०) आयुष्मान आनन्द से यह सुनकर मल्ल, मल्ल-पुत्र, मल्ल-बधुयें, मल्ल-भार्यायें दुःखित हो ० कोई केशों को बिखेर कर क्रंदन करती थीं, दुर्मना चित्त में संतप्त हो कोई कोई केशों को बिखेर कर रोती थीं, बाँह पकड़कर रोती थीं, (वृक्ष) की भाँति गिरती थीं, (धरती पर) लुंठित विलुंठित होती थीं—"बड़ी जल्दी भगवान का निर्वाण हुआ, बड़ी जल्दी सुगत का निर्वाण हुआ, बड़ी जल्दी लोकनेत्र अंतर्धान हो गये।"

(९५१) तब कुसीनारा के मल्लों ने पुरुषों को आज्ञा दी—"तो भणे ! कुसीनारा का सभी गंध-माला और सभी वाद्यों को जमा करो।"

(२५२) तब कुसीनारा के मल्ल गंध-माला, सभी वाद्यों, और पाँच

येन भगवतो सरीरं, तेनुपसङ्कमिंसु । उपसङ्कमित्वा भगवतो सरीरं नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करोन्ता गरुकरोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता चेलवितानानि करोन्ता मण्डलमाले पटियादेन्ता एकदिवसं वीतिनामेसुं ।

(२५३) अथ खो कोसिनारकानं मल्लानं एतदहोसि—"अतिविकालो खो अज्ज भगवतो सरीरं झापेतुं । स्वेदानि मयं भगवतो सरीरं झापेस्सामा" ति ।

(२५४) अथ खो कोसिनारका मल्ला भगवतो सरीरं नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करोन्ता गरुकरोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता चेलवितानानि करोन्ता मण्डलमाले पटियादेन्ता दुतियम्पि दिवसं वीतिना-

हजार थान (=दुस्स)-जोड़ों को लेकर जहाँ *उपवत्तन ० था, जहाँ भगवान का शरीर था, वहाँ गये । जाकर उन्होंने भगवान के शरीर को नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंध से सत्कार करते, = गुरुकार करते, = मानते = पूजते, कपड़े का वितान (= चँदवा) करते, मंडप बनाते उस दिन को बिता दिया ।

(२५३) तब कुसीनारा के मल्लों को हुआ—'भगवान के शरीर को दाह करने को आज बहुत विकाल हो गया । अब कल भगवान के शरीर का दाह करेंगे ।'

(२५४) तब कुसीनारा के मल्लों ने भगवान के शरीर को नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंध से सत्कार करते = गुरुकार करते = मानते = पूजते, चंदवा तानते, मंडप बनाते दूसरा दिन भी बिता दिया । तीसरा

---

*वर्तमान कुशिनगर माथाकुंवर, कसया (जि. देवरिया) ।

मेसुं । ततियम्पि दिवसं वीतिनामेसुं । चतुत्थंपि दिवसं वीतिनामेसुं । पञ्चमंपि दिवसं वीतिनामेसुं । छट्ठंपि दिवसं वीतिनामेसुं ।

(२५५) अथ खो सत्तमं दिवसं कोसिनारकानं मल्लानं एतदहोसि—"मयं भगवतो सरीरं नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करोन्ता गरुकरोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता दक्खिणेन नगरस्स हरित्वा बाहिरेन बाहिरं दक्खिणतो नगरस्स भगवतो सरीरं झापेस्सामा" ति । तेन खो पन समयेन अट्ठ मल्लपामोक्खा सीसं न्हाता अहतानि वत्थानि निवत्था मयं भगवतो सरीरं उच्चारेस्सामा ति । न सक्कोन्ति उच्चारेतुं ।

(२५६) अथ खो कोसिनारका मल्ला आयस्मन्तं अनुरुद्धं एतदवोचुं—"को नु खो भन्ते अनुरुद्धं, हेतु, को पच्चयो येनिमे अट्ठ मल्लपामोक्खा सीसं न्हाता अहतानि वत्थानि निवत्था मयं भगवतो सरीरं उच्चारेस्सामा ति । न सक्कोन्ति उच्चारेतुं" ति ? ।

दिन भी ०। ० चौथा दिन भी ०। ० पाँचवाँ दिन भी ०। छठाँ दिन भी ०।

(२५५) तब सातवें दिन कुसीनारा के मल्लों को यह हुआ—'हम भगवान के शरीर को नृत्य० गंध से सत्कार करते नगर के दक्षिण से लेजाकर बाहर से बाहर नगर के दक्षिण भगवान के शरीर का दाह करें। उस समय मल्लों के आठ प्रमुख (=मुखिया) शिर से नहाकर, नये वस्त्र पहिन, भगवान के शरीर को उठाना चाहते थे ; लेकिन वह नहीं उठा पाते थे।

(२५६) तब कुसीनारा के मल्लों ने आयुष्मान अनुरुद्ध से पूछा—"भन्ते ! अनुरुद्ध ! क्या हेतु है=क्या कारण है; जो कि हम आठ मल्ल-प्रमुख भगवान के शरीर को नहीं उठा सकते ?"

(२५७) "अञ्ञथा खो वासेट्ठा, तुम्हाकं अधिप्पायो, अञ्ञथा देवतानं अधिप्पायो" ति।

(२५८) "कथं पन भन्ते, देवतानं अधिप्पायो" ति ?

(२५९) तुम्हाकं खो वासेट्ठा अधिप्पायो "मयं भगवतो सरीरं नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करोन्ता गरुकरोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता दक्खिणेन दक्खिणं नगरस्स हरित्वा बाहिरेन बाहिरं दक्खिणतो नगरस्स भगवतो सरीरं झापेस्सामा ति"।

(२६०) देवतानं खो वासेट्ठा, अधिप्पायो—"मयं भगवतो सरीरं दिब्बेहि नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करोन्ता गरुकरोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता उत्तरेन उत्तरं नगरस्स हरित्वा उत्तरेन द्वारेन नगरं पवेसेत्वा मज्झेन मज्झं नगरस्स हरित्वा पुरत्थिमेन द्वारेन निक्खमित्वा

(२५७) "वाशिष्टो ! तुम्हारा अभिप्राय दूसरा है, और देवताओं का अभिप्राय दूसरा है।"

(२५८) "भन्ते ! देवताओं का अभिप्राय क्या है।

(२५९) "वाशिष्टो ! तुम्हारा अभिप्राय है, हम भगवान के शरीर को नृत्य० से सत्कार करते० नगर के दक्षिण द्वार से दक्षिण ले जाकर, बाहर से बाहर नगर के दक्षिण, भगवान के शरीर का दाह करें।

(२६०) देवताओं का अभिप्राय है—हम भगवान के शरीर को दिव्य नृत्य से० सत्कार करते० नगर के उत्तर उत्तर ले जाकर, उत्तर-द्वार से नगर में० प्रवेश कर, नगर के बीच ले जा, पूर्व-द्वार से निकल, नगर

पुरत्थिमतो नगरस्स मकुटबन्धनं नाम मल्लानं चेतियं, एत्थ भगवतो सरीरं झापेस्सामा" ति ।

(२६१) "यथा भन्ते, देवतानं अधिप्पायो तथा होतू" ति ।

(२६२) तेन खो पन समयेन कुसिनारा याव सन्धिसमलसंकटीरा जण्णुमत्तेन ओधिना मन्दारवपुप्फेहि सन्थता होति ।

(२६३) अथ खो देवता च कोसिनारका च मल्ला भगवतो सरीरं दिब्बेहि च मानुसकेहि च नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करोन्ता गरुकरोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता उत्तरेन उत्तरं नगरस्स हरित्वा उत्तरेन द्वारेन नगरं पवेसेत्वा मज्झेन मज्झं नगरस्स हरित्वा पुरत्थिमेन द्वारेन निक्खमित्वा पुरत्थिमतो नगरस्स मकुटबन्धनं नाम मल्लानं चेतियं, एत्थ च भगवतो सरीरं निक्खिपिंसु ।

के पूर्व ओर (जहाँ) *मुकुट-बंधन नामक मल्लों का चैत्य (=देवस्थान) है, वहाँ भगवान के शरीर का दाह करें ।"

(२६१) "भन्ते ! जैसा देवताओं का अभिप्राय है—वैसा ही हो ।"

(२६२) उस समय कुसीनारा में जाँघ भर मन्दारव-पुष्प (=एक दिव्य पुष्प) बरसे हुए थे ।

(२६३) तब देवताओं और कुसीनारा के मल्लों ने भगवान के शरीर को दिव्य और मानुष नृत्य० के साथ सत्कार करते० नगर से उत्तर उत्तर ले जाकर० (जहाँ) मुकुट-बंधन नामक मल्लों का चैत्य था, वहाँ भगवान का शरीर रक्खा ।

---

*वर्तमान रामाभार, कसया (जि. देवरिया) ।

(२६४) अथ खो कोसिनारका मल्ला आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोचुं—"कथं मयं भन्ते आनन्द, तथागतस्स सरीरे पटिपज्जामा ति ?"

(२६५) "यथा खो वासेट्ठा, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ति, एवं तथागतस्स सरीरे पटिपज्जितब्बन्ति ।"

(२६६) "कथं पन भन्ते आनन्द, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ती" ति ?

(२६७) "रञ्ञो वासेट्ठा, चक्कवत्तिस्स सरीरं अहतेन वेठेन्ति। अहतेन वत्थेन वेठेत्वा विहतेन कप्पासेन वेठेन्ति। विहतेन कप्पासेन वेठेत्वा अहतेन वत्थेन वेठेन्ति। एतेन उपायेन पञ्चहि युगसतेहि रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरं वेठेत्वा आयसाय तेलदोणिया पक्खिपित्वा अञ्ञिस्सा आयसाय दोणिया पटिकुज्जित्वा सब्बगन्धानं चितकं करित्वा रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरं झापेन्ति। चातुम्महापथे रञ्ञो चक्कवत्तिस्स थूपं करोन्ति। एवं खो वासेट्ठा, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ति। "यथा खो वासेट्ठा, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स सरीरे पटिपज्जन्ति, एवं तथागतस्स सरीरे पटिपज्जितब्बं। चातुम्महापथे तथागतस्स थूपो कातब्बो। तत्थ ये मालं वा

(२६४) तब कुसीनारा के मल्लों ने आयुष्मान आनन्द से कहा—"भन्ते ! आनन्द ! हम तथागत के शरीर को कैसे करें ?"

(२६५) "वाशिष्टो ! जैसे चक्रवर्ती राजा के शरीर को करते हैं, वैसे ही तथागत के शरीर को करना चाहिये।"

(२६६) "कैसे भन्ते ! चक्रवर्ती राजा के शरीर को करते हैं।"

(२६७) "वाशिष्टो ! चक्रवर्ती राजा के शरीर को नये कपड़े से लपेटते हैं ०। (दाहकर) बड़े चौरस्ते पर तथागत का स्तूप बनवाना चाहिये। वहाँ जो माला, गंध या चूर्ण चढ़ायेंगे, या अभिवादन करेंगे, या

गन्धं वा चुण्णकं वा आरोपेस्सन्ति वा अभिवादेस्सन्ति वा चित्तं वा पसादेस्सन्ति, तेसं तं भविस्सति दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति ।

(२६८) अथ खो कोसिनारका मल्ला पुरिसे आणापेसुं—"तेन हि भणे, मल्लानं विहतं कप्पासं सन्निपातेथा" ति ।

(२६९) अथ खो कोसिनारका मल्ला भगवतो सरीरं अहतेन वत्थेन वेठेत्वा विहतेन कप्पासेन वेठेसुं । विहतेन कप्पासेन वेठेत्वा अहतेन वत्थेन वेठेसुं । एतेन उपायेन पञ्चहि युगसतेहि भगवतो सरीरं वेठेत्वा आयसाय तेलदोणिया पक्खिपित्वा अञ्ञिस्सा आयसाय दोणिया पटिकुज्जित्वा सब्ब-गन्धानं चितकं करित्वा भगवतो सरीरं आरोपेसुं ।

(२७०) तेन खो पन समयेन आयस्मा महाकस्सपो पावाय कुसिनारं अद्धानमग्गपटिपन्नो होति महता भिक्खुसंघेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खु-

चित्त को प्रसन्न करेंगे, उनके लिये वह चिरकाल तक हित-सुख के लिये होगा ।"

(२६८) तब कुसीनारा के मल्लों ने आदमियों को आज्ञा दी—"जाओ रे ! धुनी रुई को एकत्रित करो ।

(२६९) तब कुसीनारा के मल्लों ने भगवान के शरीर को वस्त्र में लपेटा । कोरे वस्त्र में लपेटकर धुने कपास से लपेटा । धुने कपास से लपेटकर, कोरे वस्त्र में लपेटा । इसी प्रकार पांच सौ जोड़े में लपेटकर ताँबे (=लोह) की तेल वाली कड़ाही (=द्रोणी) में रख सारे गंध (काष्टों) की चिता बनाकर, भगवान के शरीर को चिता पर रक्खा ।

महाकाश्यप को दर्शन

(२७०) उस समय आयुष्मान महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओं के महाभिक्षु संघ के साथ पावा और कुसीनारा के बीच में, रास्ते पर जा

सतेहि। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो मग्गा ओक्कम्म अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसीदि। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो आजीवको कुसिनाराय मन्दारवपुप्फं गहेत्वा पावं अद्धानमग्गपटिपन्नो होति। अद्दसा खो आयस्मा महाकस्सपो तं आजीवकं दूरतो व आगच्छन्तं, दिस्वा तं आजीवकं एतदवोच—

(२७१) "आवुसो, अम्हाकं सत्थारं जानासी ति ?"

(२७२) "आमावुसो, जानामि, अज्ज सत्ताहपरिनिब्बुतो समणो गोतमो। ततो मे इदं मन्दारवपुप्फं गहितन्ति"।

(२७३) तत्थ ये ते भिक्खू अवीतरागा अप्पेकच्चे बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति। छिन्नपातं पपतन्ति। आवट्टन्ति विवट्टन्ति—"अतिखिप्पं भगवा परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं सुगतो परिनिब्बुतो, अतिखिप्पं चक्खुमा लोके

रहे थे। तब आयुष्मान महाकाश्यप मार्ग से हटकर एक वृक्ष के नीचे बैठे। उस समय एक आजीवक कुसीनारा से मंदार का पुष्प ले पावा के रास्ते पर जा रहा था। आयुष्मान् महाकाश्यप ने उस आजीवक को दूरसे आते देखा। देखकर उस आजीवक से यह कहा—

(२७१) "आवुस ! क्या हमारे शास्ता को भी जानते हो ?"

(२७२) "हाँ, आवुस! जानता हूं; श्रमण गौतम को परिनिर्वृत हुए आज एक सप्ताह होगया; मैंने यह मंदार-पुष्प वहींसे पाया।"

(२७३) यह सुन वहाँ जो अवीत राग भिक्षु थे, (उनमें) कोई कोई बाँह पकड़कर रोते ०। उस समय सुभद्र नामक (एक) वृद्धप्रव्रजित (=बुढ़ापे में साधु हुआ) उस परिषद् में बैठा था। तब वृद्ध-प्रव्रजित सुभद्र ने उन भिक्षुओं से यह कहा—"मत आवुसो ! मत शोक करो, मत रोओ।

अन्तरहितो" ति। ये पन ते भिक्खू वीतरागा ते सता सम्पजाना अधिवासेन्ति—"अनिच्चा सङ्खारा तं कुतेत्थ लब्भा" ति।

तेन खो पन समयेन सुभद्दो नाम बुड्ढपब्बजितो तस्सं परिसायं निसिन्नो होति। अथ खो सुभद्दो बुड्ढपब्बजितो ते भिक्खू एतदवोच—"अलं आवुसो, मा सोचित्थ, मा परिदेवित्थ। सुमुत्ता मयं तेन महासमणेन उपद्दुता च होम 'इदं वो कप्पति, इदं वो न कप्पती' ति। इदानि पन मयं यं इच्छिस्साम तं करिस्साम। यं न इच्छिस्साम न तं करिस्सामा" ति।

(२७४) अथ खो आयस्मा महाकस्सपो भिक्खू आमन्तेसि—"अलं आवुसो, मा सोचित्थ, मा परिदेवित्थ। ननु एतं आवुसो, भगवता पटिगच्चेव अक्खातं, सब्बेहेव पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो अञ्ञथाभावो। तं कुतेत्थ आवुसो लब्भा, यन्तं जातं भूतं सङ्खतं पलोकधम्मं, तं तथागतस्सा पि सरीरं मा पलुज्जीति। नेतं ठानं विज्जती" ति।

(२७५) तेन खो पन समयेन चत्तारो मल्लपामोक्खा सीसं न्हाता अहतानि वत्थानि निवत्था, "मयं भगवतो चितकं आलिम्पेस्सामा" ति। न

हम सुमुक्त हो गये। उस महा श्रमण से पीड़ित रहा करते थे—'यह तुम्हें विहित है, यह तुम्हें विहित नहीं है।' अब हम जो चाहेंगे, सो करेंगे; जो नहीं चाहेंगे, सो नहीं करेंगे।"

(२७४) तब आयुष्मान् काश्यप ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—"आवुसो! मत सोचो, मत रोओ। आवुसो! भगवान् ने तो यह पहले ही कह दिया है—सभी प्रियों—मनापो से जुदाई ० होनी है, सो वह आवुसो! कहाँ मिलने वाला है? जो जात (= उत्पन्न) = भूत ० है, वह नाश होने वाला है। 'हाय! वह नाश मत हो'—यह सम्भव नहीं।"

(२७५) उस समय चार मल्ल-प्रमुख शिर से नहा कर, नया वस्त्र

सक्कोन्ति आलिम्पेतुं। अथ खो कोसिनारका मल्ला आयस्मन्तं अनुरुद्धं एतदवोचुं—"कोनु खो भन्ते अनुरुद्ध, हेतु को पच्चयो, येनिमे चत्तारो मल्लपामोक्खा सीसं न्हाता अहतानि वत्थानि निवत्था मयं भगवतो चितकं आलिम्पेस्सामा ति। न सक्कोन्ति आलिम्पेतुन्ति"।

(२७६) "अञ्ञथा खो वासेट्ठा, देवतानं अधिप्पायो" ति।

(२७७) "कथं पन भन्ते, देवतानं अधिप्पायो" ति?

(२७८) देवतानं खो वासिट्ठा! अधिप्पायो—"अयं आयस्मा महाकस्सपो पावाय कुसिनारं अद्धानमग्गपटिपन्नो महता भिक्खुसंघेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि। न ताव भगवतो चितको पज्जलिस्सति, यावायस्मा महाकस्सपो भगवतो पादे सिरसा न वन्दिस्सती" ति।

(२७९) "यथा भन्ते, देवतानं अधिप्पायो तथा होतू" ति।

पहिन, भगवान् की चिता को आग देना चाहते थे, किन्तु नहीं दे पा रहे थे। तब कुसीनारा के मल्लों ने आयुष्मान् अनुरुद्ध से पूछा—"भन्ते अनुरुद्ध! क्या हेतु है—क्या प्रत्यय है, जिस से कि चार मल्ल-प्रमुख ० आग नहीं दे सकते हैं।"

(२७६) "वाशिष्टो! ० देवताओं का दूसरा ही अभिप्राय है।"

(२७७) भन्ते! देवताओं का अभिप्राय क्या है?

(२७८) आयुष्मान् महा काश्यप पाँच सौ भिक्षुओं के महाभिक्षुसंघ के साथ पावा और कुसीनारा के बीच रास्ते में आ रहे हैं। भगवान् की चिता तब तक न जलेगी, जब तक आयुष्मान् महाकाश्यप स्वयं भगवान् के चरणों को...शिर से वन्दना न कर लेंगे।"

(२७९) "भन्ते! जैसा देवताओं का अभिप्राय है, वैसा ही हो।"

(२८०) अथ खो आयस्मा महाकस्सपो येन कुसिनारा मकुटबन्धनं नाम मल्लानं चेतियं येन भगवतो चितको तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा एकंसं चीवरं कत्वा अञ्जलिं पणामेत्वा तिक्खत्तुं चितकं पदक्खिणं कत्वा भगवतो पादे सिरसा वन्दि । तानि पि खो पञ्च भिक्खुसतानि एकंसं चीवरं कत्वा अञ्जलिं पणामेत्वा तिक्खत्तुं चितकं पदक्खिणं कत्वा भगवतो पादे सिरसा वन्दिंसु । वन्दिते च पनायस्मता महाकस्सपेन तेहि च पञ्चहि भिक्खुसतेहि सयमेव भगवतो चितको पज्जलि ।

(२८१) झायमानस्स खो पन भगवतो सरीरस्स यं अहोसि छवीति वा चम्मन्ति वा मंसन्ति वा न्हारूति वा लसिकाति वा, तस्स नेव छारिका पञ्ञायित्थ न मसि । सरीरानेव अवसिस्सिंसु । सेय्यथापि नाम सप्पिस्स वा तेलस्स वा झायमानस्स नेव छारिका पञ्ञायति, न मसि, एवमेव भगवतो सरीरस्स झायमानस्स यं अहोसि छवीति वा चम्मन्ति वा मंसन्ति वा न्हारूति वा लसिकाति वा, तस्स नेव छारिका पञ्ञायित्थ न मसि, सरीरानेव अवसिस्सिंसु । तेसञ्च पञ्चन्नं दुस्सयुगसतानं द्वेव दुस्सानि न

(२८०) तब आयुष्मान् महाकाश्यप ने जहाँ मल्लों का मुकुट बन्धन नामक चैत्य था, जहाँ भगवान् की चिता थी, वहाँ...पहुंच कर चीवर को एक कन्धे पर कर अञ्जली जोड़, तीन बार चिता की परिक्रमा कर, चरण खोल कर, शिर से वन्दना की । उन पाँच सौ भिक्षुओं ने भी एक कन्धे पर चीवर कर, हाथ जोड़ तीन बार चिता की प्रदक्षिणा कर, भगवान के चरणों में शिर से वन्दना की । आयुष्मान महाकाश्यप और उन पाँच सौ भिक्षुओं के वन्दना कर लेते ही, भगवास की चिता स्वयं जल उठी ।

(२८१) भगवान के शरीर में जो छवि (=झिल्ली) या चर्म, मांस, नस, या लसिका थी उन की न राख जान पड़ी, न कोयला; सिर्फ अस्थियाँ ही बाकी रह गईं; जैसे कि जलते हुए घी या तेल की न राख (=छारिका)

डयिहसु यञ्च सब्बं अब्भन्तरिमं यञ्च बाहिरं। दड्ढे च खो पन भगवतो सरीरे अन्तलिक्खा उदकधारा पातुभवित्वा भगवतो चितकं निब्बापेसि। उदकं सालतो पि अब्भुन्नमित्वा भगवतो चितकं निब्बापेसि। कोसिनारका पि मल्ला सब्बगन्धोदकेन भगवतो चितकं निब्बापेसुं।

(२८२) अथ खो कोसिनारका मल्ला भगवतो सरीरानि सत्ताहं सन्थागारे सत्तिपञ्जरं करित्वा धनुपाकारं परिक्खिपापेत्वा नच्चेहि गीतेहि वादितेहि मालेहि गन्धेहि सक्करिंसु गरुकरिंसु मानेसुं पूजेसुं।

(२८३) अस्सोसि खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो—'भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो ति'। अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसि—'भगवा पि खत्तियो अहं पि

जान पड़ती है, न कोयला (=मसी)...। भगवान के शरीर के दग्ध हो जाने पर मेघ ने प्रादुर्भूत हो आकाश से भगवान की चिता को ठंडा किया।...। कुसीनारा के मल्लों ने भी सर्व-गन्ध (-मिश्रित) जल से भगवान की चिता को ठंडा किया।

(२८२) तब कुसीनारा के मल्लों ने भगवान की अस्थियों (=सरीरानि) को सप्ताह भर संस्थागार में शक्ति (-हस्त पुरुषों के घेरे का) -पंजर बनवा, धनुष (-हस्त पुरुषों के घेरे का) -प्राकार बनवा, नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंध से सत्कार किया= गुरुकार किया, माना पूजा।

स्तूप-निर्माण

(२८३) राजा मागध अजातशत्रु वैदेहीपुत्र ने सुना—'भगवान कुसीनारा में परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।' तब राजा० अजातशत्रु० ने कुसीनारा के मल्लों के पास दूत भेजा—'भगवान भी क्षत्रिय (थे), मैं भी क्षत्रिय

खत्तियो। अहं पि अरहामि भगवतो सरीरानं भागं। अहं पि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामी' ति।

(२८४) अस्सोसुं खो वेसालिका लिच्छवी—'भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो ति'। अथ खो वेसालिका लिच्छवी कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—'भगवा पि खत्तियो मयम्पि खत्तिया। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं। मयम्पि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामा' ति।

(२८५) अस्सोसुं खो कापिलवत्थवा सक्या—'भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो' ति। अथ खो कापिलवत्थवा सक्या कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—'भगवा अम्हाकं ञातिसेट्ठो। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं। मयम्पि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामा' ति।

(२८६) अस्सोसुं खो अल्लकप्पका बुलयो—'भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो' ति। अथ खो अल्लकप्पका बुलयो कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—'भगवा पि खत्तियो मयम्पि खत्तिया। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं। मयम्पि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामा' ति।

(हूं); भगवान के शरीर (=अस्थियों) में मेरा भाग भी वाजिब है। मैं भी भगवान के शरीर का स्तूप बनवाऊँगा और पूजा करूंगा।'

(२८४) वैशाली के लिच्छवियों ने सुना ०।

(२८५) कपिलवस्तु के शाक्यों ने सुना ०।—'भगवान हमारे जाति के (थे) ०।

(२८६) अल्लकप्प के बुलियों ने सुना ०।

(२८७) अस्सोसुं खो रामगामका कोलिया—'भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो' ति। अथ खो रामगामका कोलिया कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—'भगवा पि खत्तियो मयम्पि खत्तिया। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं। मयम्पि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामा' ति।

(२८८) अस्सोसि खो वेठदीपको ब्राह्मणो—'भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो' ति। अथ खो वेठदीपको ब्राह्मणो कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसि,—'भगवा पि खत्तियो अहमस्मि ब्राह्मणो। अहम्पि अरहामि भगवतो सरीरानं भागं। अहपि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामी' ति।

(२८९) अस्सोसुं खो पावेय्यका मल्ला†—'भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो' ति। अथ खो पावेय्यका मल्ला कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—'भगवा पि खत्तियो मयम्पि खत्तिया। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं। मयम्पि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामा' ति।

(२९०) एवं वुत्ते कोसिनारका मल्ला ते सङ्घे गणे एतदवोचुं—

(२८७) रामग्राम के कोलियों ने सुना ०।

(२८८) वेठ-दीप के ब्राह्मणों ने सुना ०, भगवान भी क्षत्रिय थे, हम ब्राह्मण ०।

(२८९) पावा के मल्लों ने भी सुना" ।।

(२९०) ऐसा कहने पर कुसीनारा के मल्लों ने उन संघों और गणों

---

†पडरौना के आस-पास में रहने वाले मल्ल।

'भगवा अम्हाकं गामक्खेत्ते परिनिब्बुतो । न मयं दस्साम भगवतो सरीरानं भागं' ति ।

(२९१) एवं वुत्ते दोणो ब्राह्मणो ते सङ्घे गणे एतदवोच—

"सुणन्तु भोन्तो, मम एक वाक्यं,
अम्हाकं बुद्धो अहु खन्तिवादो ।
न हि साधु यं उत्तम पुग्गलस्स
सरीरभागे सिया संपहारो ॥

सब्बे व भोन्तो, सहिता समग्गा,
सम्मोदमाना करोमट्ठ भागे ।
वित्थारिका होन्तु दिसासु थूपा,
बहूजना चक्खुमतो पसन्ना" ति ॥

से कहा—"भगवान हमारे ग्राम-क्षेत्र में परिनिर्वृत हुए, हम भगवान के शरीर (=अस्थियों) का भाग नहीं देंगे ।"

(२९१) ऐसा कहने पर द्रोण ब्राह्मण ने संघों और गणों से यह कहा—

"आप सब मेरी एक बात सुनें, हमारे बुद्ध क्षांति (=क्षमा)-वादी थे ।

यह ठीक नहीं कि (उस) उत्तम पुरुष की अस्थि-बाँटने में मार पीट हो ।

आप सभी एक साथ=एक राय संमोदन करते आठ भाग करें ।

दिशाओं में स्तूपों का विस्तार हो, बहुत से लोग चक्षुमान (=बुद्ध) में प्रसन्न हों ।

(२९२) "तेन हि ब्राह्मण ! त्वञ्ञेव भगवतो सरीरानि अट्ठधा समं सुविभत्तं विभजाही" ति ।

(२९३) "एवं भो" ति खो दोणो ब्राह्मणो तेसं सङ्घानं गणानं पटिस्सुत्वा भगवतो सरीरानि अट्ठधा समं सुविभत्तं विभजित्वा ते सङ्घे गणे एतदवोच—"इमं मे भोन्तो, तुम्बं ददन्तु, अहं पि तुम्बस्स थूपञ्च महञ्च करिस्सामी" ति ।

(२९४) अदंसु खो ते दोणस्स ब्राह्मणस्स तुम्बं ।

(२९५) अस्सोसुं खो पिप्पलिवनिया मोरिया—'भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो' ति । अथ खो पिप्पलिवनिया मोरिया कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—'भगवा पि खत्तियो मयम्पि खत्तिया । मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं । मयम्पि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामा' ति ।

(२९२) "तो ब्राह्मण ! तू ही भगवान के शरीर को आठ समान भागों में सुविभक्त कर ।"

(२९३) "अच्छा भो !" ...द्रोण ब्राह्मण ने भगवान के शरीर को आठ समान भागों में सुविभक्त (=बाँट) कर, उन संघों गणों से कहा—"आप सब इस तुम्बे को मुझे दें, मैं तुम्ब का स्तुप बनाऊँगा और पूजा करुँगा ।"

(२९४) उन्हों ने द्रोण ब्राह्मण को तुम्ब दे दिया ।

(२९५) पिप्पलीवन के मोरियों (=मौर्यों) ने सुना ० "भगवान भी क्षत्रिय हम भी क्षत्रिय ० ।"

"नत्थि भगवतो सरीरानं भागो, विभत्तानि भगवतो सरीरानि। इतो अङ्गारं हरथा" ति। ते ततो अङ्गारं हरिंसु।

(२९६) अथ खो [१] राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजगहे भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च अकासि।

"भगवान के शरीर का भाग नहीं है, भगवान के शरीर बँट चुके। यहाँ से कोयला (=अंगार) ले जाओ।" वह वहाँ से अंगार ले गये।

(२९६) तब (१) राजा ० *अजातशत्रु ० ने राजगृह में भगवान के

---

*अ. क. "कुसीनारा से राजगृह पचीस योजन है। इस बीच में आठ ऋषभ चौड़ा समतल मार्ग बनवा, मल्ल राजाओं ने मुकुट-बंधन और संस्थागार में जैसी पूजा की थी, वैसी ही पूजा पचीस योजन मार्ग में की।... (उसने) अपने पाँच सौ योजन परिमंडल (=घेरेवाले) राज्य के मनुष्यों को एकत्रित करवाया। उन धातुओं को ले, कुसीनारा से धातु (-निमित्त) क्रीड़ा करते निकलकर (लोग) जहाँ सुन्दर पुष्पों को देखते,... वहीं पूजा करते थे। इस प्रकार धातु लेकर आते हुए, सात वर्ष सात मास सात दिन बीत गये।... लाई गई धातुओं को लेकर (अजातशत्रु ने) राजगृह में स्तूप बनवाया, पूजा कराई।...

इस प्रकार स्तूपों के प्रतिष्ठित हो जानेपर महाकाश्यप स्थविर ने धातुओं के अन्तराय (=विघ्न) को देखकर, राजा अजातशत्रु के पास जाकर कहा—"महाराज! एक धातु-निधान (=अस्थि धातु रखने का चहबच्चा) बनाना चाहिये।" "अच्छा भन्ते!"...

स्थविर उन-उन राजकुलों को पूजा करने मात्र की धातु छोड़कर बाकी धातुओं को ले आये। राम ग्राम में धातुओं के नागों के ग्रहण करने

[२] वेसालिका पि लिच्छवी वेसालियं भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च अकंसु।

[३] कापिलवत्थवापि सक्या कपिलवत्थुस्मिं भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च अकंसु।

[४] अल्लकप्पका पि बुलयो अल्लकप्पे भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च अकंसु।

[५] रामगामका पि कोलिया रामगामे भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च अकंसु।

[६] वेठदीपको पि ब्राह्मणो वेठदीपे भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च अकासि।

[७] पावेय्यका पि मल्ला पावायं भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च अकंसु।

[८] कोसिनारका पि मल्ला कुसिनारायं भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च अकंसु।

अस्थियोंका स्तूप (बनाया) और पूजा (=मह) [२] वैशाली के लिच्छवियों ने भी०। [३] कपिलवस्तु के शाक्यों ने भी ०। [४] अल्लकप्प के बुलियों ने भी ०। [५] रामगाम के कोलियों ने भी ०। [६] वेठदीप के ब्राह्मणों ने भी ०। [७] पावा के मल्लों ने भी ०। [८] कुसीनारा के

से अन्तराय न था; भविष्य में लंका-द्वीप में इसे महाविहार के महाचैत्य में स्थापित करेंगे'—के (ख्याल से भी) न ले आये। बाकी सातों नगरों से ले आकर, राजगृह के पूर्व दक्षिण भाग में...(जो स्थान है); राजा ने उस स्थान को खुदवाकर, उनसे निकली मिट्टी से ईटें बनवाई। 'यहाँ राजा क्या बनवाता है', पूछनेवालों को भी 'महाश्रावकों का चैत्य बनवाता है, यही कहते थे; कोई भी धातु-निधान की बात न जानता था।

[९] दोणो पि ब्राह्मणो तुम्बस्स थूपञ्च महञ्च अकासि ।

[१०] पिप्पलिवनिया पि मोरिया पिप्पलिवने अङ्गारानं थूपञ्च महञ्च अकंसु ।

(२९७) इति अट्ठ सरीरथूपा, नवमो तुम्बथूपो, दसमो अङ्गारथूपो; एवमेतं भूतपुब्बन्ति ।

(२९८) अट्ठ दोणं चक्खुमतो सरीरं
सत्त दोणं जम्बुदीपे महेन्ति ।
एकञ्च दोणं पुरिसवरुत्तमस्स,
रामगामे नागराजा महेन्ति ।
एका हि दाठा तिदिवेहि पूजिता,
एका पन गन्धारपुरे महीयति ।
कालिङ्ग रञ्ञो विजिते पुनेकं,
एकं पन नागराजा महेति ॥

मल्लों ने भी ० । [९] द्रोण ब्राह्मण ने भी तुम्बका ० । [१०] पिप्पलीवन के मौर्यों ने भी अंगारों का ० ।

(२९७) इस प्रकार आठ शरीर (=अस्थि) के स्तूप, नवाँ तुम्ब-स्तूप और दसवाँ कोयला-स्तूप पूर्वकाल (=भूतपूर्व) मे थे ।

(२९८) "चक्षुमानका शरीर आठ द्रोण था, (जिसमें) सात द्रोण जम्बूदीप में पूजित होते हैं ।

(और) पुरुषोत्तम का एक द्रोण राम-गाम में नागों से पूजा जाता है ।

एक दाढ़ (=दाठा) स्वर्ग-लोक में पूजित है, और एक गंधारपुर में पूजी जाती है ।

तस्सेव तेजेन अयं वसुन्धरा,
आयागसेट्ठेहि मही अलङ्कता।
एवं इमं चक्खुमतो सरीरं,
सुसक्कतं सक्कतसक्कतेहि ॥

देविन्दनागिन्दनरिन्द पूजितो,
मनुस्सिन्द सेट्ठेहि तथेव पूजितो।
तं वन्दथ पञ्जलिका लभित्वा,
बुद्धो हवे कप्पसतेहि दुल्लभो ति ॥

चत्तालीस समा दन्ता केसा लोमा च सब्बसो।
देवा हरिंसु एकेकं चक्कवालपरंपरा ति ॥

महापरिनिब्बानसुत्तं ततियं ॥

एक कलिंगराजा के देश में है; और एक को नागराज पूजते हैं।
उसी तेज से पटुका की भाँति यह वसुंधरा मही अलंकृत है।
इस प्रकार चक्षुष्मान् (=बुद्ध) का शरीर सत्कृतों द्वारा सुसत्कृत हुआ।
देवेन्द्रों नागेन्द्रों नरेन्द्रों से पूजित तथा श्रेष्ठ मनुष्यों से पूजित हुआ।
उसे हाथ जोड़कर वंदना करो, सौ कल्प में भी बुद्ध होना दुर्लभ है।
चालीस केश, रोम आदि को चारों ओर,
एक एक करके नाना चक्रवालों में देवता ले गये।

तृतीय महापरिनिर्वाण सूत्र ॥

परिशिष्ट

महापरिनिर्वाण सूत्र में उल्लिखित ऐतिहासिक व्यक्ति, ग्राम, नगर एवं नदियों के नाम इस प्रकार हैं।

शब्दानुक्रमणी

अजपाल निग्रोध—(=अजपाल बर्गद, बुद्ध-गया के समीप)।
अजातसत्तु—(=अजातशत्रु, मगध का राजा)।
अजितकेसकम्बल—(जड़वादी तीर्थ-कर)।
अपरिहानियधम्म—(=अपतन के नियम)।
अम्बका—(=अम्बपाली गणिका)।
अम्बपालिवन—(=अम्बपाली गणिका के आम्रवन, वैशाली में)।
अम्बपालि गणिका—(=अम्बपाली वेश्या, वैशाली में)।
अम्बलट्ठिका—(=सम्भवतः वर्तमान सिलाव)।
अरहन्त—(=अर्हत)।
अरिय सावक—(=बुद्ध के शिष्य)।
आलकमन्दा—(=देवताओं की राजधानी)।
आलार कालाम—(=एक ऋषि का नाम)।
आवसथागार—(=अतिथिशाला)।
उज्जङ्गल-नगरक—(जंगली नगरक)।
उपवाण—(एक भिक्षु, जिनको भगवान ने अपने सामने से हटा दिये थे)।
उरुवेला—(=उरुवेला वन, बुद्ध गया के पास में)।
ककुधा नदी—(पडरौना और कसया के बीच की एक नदी)।
कुसावती—(=कुसिनारा का पुराना नाम)।
कुसिनारा—(=मल्लों की राजधानी)।
कोटिगाम—(=कोटिग्राम)।
खुद्दक-नगरक—(=क्षुद्र नगर)।
गिज्झकूट—(=गृध्रकूट पर्वत, राजगृह में)।
गिञ्जकावसथ—(नातिका में)।

गोतमद्वार—(गौतम द्वार, पटना शहर का एक द्वार का नाम)।
गोतमनिग्रोध—(राजगृह में)।
चतुमहाराजिक—(=चारदिग्पाल देवता)।
चापाल चेतिय—(चापाल चैत्य, वैशाली में)।
चुन्द—(=चुन्द भिक्षु एवं पावा के एक सोनार)।
जीवक—(=राजगृह का राजवैद्य)।
जोवकम्बवन—(जीवक का दान किया हुआ विहार)।
तपोदाराम—(गर्म जलवाली नदी के समीपवर्ती विहार, राजगृह में)।
तार्वातिस—(=त्रायस्त्रिंश देवलोक)।
थेर—(=स्थविर भिक्षु)।
धम्मचक्क—(=धर्म चक्र)।
धम्मविनय—(=बुद्ध-धर्म)।
धम्मिकबलि—(=धार्मिक दान)।
नालन्दा—(=वर्तमान् बड़गांव, जि० पटना)।
निगण्ठ नाथपुत्त—(=महाबीर)।
निब्बान—(=अ-शेष विराग और आवागमन रहित निर्वाण)।
नेरञ्जरा—(=वर्तमान निलाजन, जि० गया)।
पकुध कच्चायन—(एक यशस्वी तीर्थंकर)।
परिवास—(=परीक्षार्थ वास)।
पाटलिगाम—(=पटना)।
पावा—(=पडरौना के पास 'पपउर')।
पावारिक अम्बवन—(=प्रावारिक-आम्र वन)।
पुक्कुस—(एक मल्ल का नाम)।
पुरण कस्सप—(पूर्ण काश्यप, अक्रिया वादी तीर्थंकार)।
बाराणसेय्यक—(=बनारसी वस्त्र)।
ब्रह्म दण्ड—(छन्द भिक्षु को दिया गया—"उपेक्षा")।
भूमिचाल—(भूकम्प के आठ कारण)।
भोगनगर—कुसिनारा के रास्ते का एक नगर)।
मुकुट-बन्धन—(वर्तमान रामाभार, कसया)।
मक्खलि गोसाल—(यशस्वी तीर्थंकर)।
मगध—(=विहार प्रांत)।
मल्ल—सैंथवार जाति, गोत्र वशिष्ट)।
महाकस्सप—(भगवान बुद्ध का एक प्रधान शिष्य)

महावन-कूटागार शाला—(=बखरा, जि० मुजफ्फरपुर)।
महासुदर्शन—(=कुशावती का चक्रवर्ती)।
मातिकाधर—(अभिधर्म के पण्डित)।
मार—(=कामदेव)।
मारो पापिमा—(=पापी कामदेव)।
मिथुभेद—(आपस में फूट)।
यमकसाल—(=जुढ़वे शाल वृक्ष)।
राजगह—(वर्तमान् राजगिर, जि० पटना)।
लिच्छवी—वैशाली के वज्जीगण)।
वज्जी—(=लिच्छवी),
वस्सकार—(मगध के महामंत्री वर्षकार ब्राह्मण)।
वासेट्ठ—(=मल्लों के गोत्र 'वशिष्ट')।
वेदेहिपुत्त—(=वैदेही रानी का पुत्र अजातशत्रु राजा)।
वेलुवन—(राजगृह में)।
वेलुवगामक—(अन्तिम वर्षावास का स्थान)।
वेसाली—(=बसाढ़, जि० मुजफ्फरपुर)।
सञ्जय बेलट्ठिपुत्त—(=एक अनिश्चितता वादी तीर्थंकार)।
सति—(=स्मृति)।
सत्तपण्णि गुहा—(=सप्तपर्णी गुहा, जहाँ बौद्धों की प्रथम सभा हुई थी, राजगृह में)।
सन्थागार—(कुसिनारा के मल्लों का सभाभवन)।
सम्बोज्झङ्ग—(=सात आवश्यक बातें)।
सम्मासम्बुद्ध—(=स्वयम् ज्ञाननेवाले भगवान बुद्ध)।
सारन्दद चेतिय—(भोगनगर में)।
सारिपुत्त—(=बुद्ध के प्रधान शिष्य)।
सालवन—(कुसिनारा में)।
सासन—(=धर्म)।
सुकरमद्दव—(=सुअर का मांस या शूकरकन्द का पाक)।
सुनीध—(=मगध के मंत्री)।
सुभद्द—(वृद्ध भिक्षु परिव्राजक का नाम)
हिरञ्ञवती—(=वर्तमान् सोनानाला, कुसिनारा के बगल में)।

—:o:—